अमानत का बोझ

(कहानी संग्रह)

माइल ख़ैराबादी

अनुवादक
नसीम ग़ाज़ी फ़लाही

विषय-सूची

?	कहाँ ?
ामानत का बोझ	5
ालीमुल्ला	10
कीना	18
न्नू की माँ	24
ुशक़िस्मत	28
न्तिक़ाम	33
र्गी	42
ालनाक जुर्म	48
बियों की माँ	57
माँ	60

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम
(अल्लाह अत्यन्त दयावान और कृपाशील के नाम से)

1

अमानत का बोझ

सोचते-सोचते मैं न जाने किस आलम में पहुँच गई । वहाँ न आसमान था न ज़मीन, न हवा और न फ़िज़ा । जी हाँ, कुछ भी न था । आप हैरान न हों । मैं सच कहती हूँ, और सुनिए मैं इस आलम में पहुँचकर, मैं न रही । मैं कैसे समझाऊँ मैं क्या होकर रह गई थी । बस यह समझिए कि मैं सिर्फ़ एक रूह थी और मेरा जिस्म ? जिस्म-विस्म कुछ भी न था । अब शायद आप समझ गए होंगे कि मैं किस आलम में थी । मैं उस जगह का नक़्शा शब्दों में खींचने से बेबस हूँ । ज़्यादा से ज़्यादा यह कह सकती हूँ कि वह सिर्फ़ एक ख़ला था जिसमें कुछ भी न था ।

फिर मैंने देखा कि मेरे ऊपर, बहुत दूर.... ऊपर बहुत ही दूर.... ऊपर, एक नीला-सा धुआँ, धुआँ नहीं, धुआँ तो गहरा होता है, वह तो बहुत हलका-सा कुछ था । अच्छा तो वह 'हलका-सा कुछ' देखते-देखते मेरे ऊपर शामियाने की तरह छा गया । 'अरे वा !' मेरी ज़बान से निकला— 'आसमान' ।

मैं बड़ी हैरत में थी कि यह आसमान आप से आप कैसे बन गया । फिर उसी आसमान में एक तरफ़ से सूरज भी आ गया अपने पूरे आबो-ताब के साथ, फिर उसी आसमान में एक तरफ़ से चाँद आ गया अपनी पूरी चमक-दमक के साथ, फिर उसी आसमान में तारे जगमगाने लगे और कहकशाँ भी बन गई ।

मैं हैरान-हैरान यह सब देख रही थी कि अचानक शोर सुना और फिर मैंने देखा एक तरफ़ से तूफ़ान-सा आया । मेरी आँखें झपक गईं । आँखों के सामने समुद्र अपनी ऊँची-ऊँची मौजों के साथ आ मौजूद हुआ । फिर ज़मीन उभरकर आ गई और उसमें पहाड़, दरिया, जंगल और जो कुछ उसमें है वह सब सामने आ गया । 'ओह मेरे ख़ुदा !' मैं कहाँ हूँ ? यह मेरी ज़बान से निकला । मैं कुछ न समझी कि मेरी नज़रों के सामने यह सब क्यों आ रहा है या लाया जा रहा है । शायद आप समझ रहे होंगे कि मैं कोई सपना देख रही थी । मुमकिन है वह सपना हो, लेकिन मेरे होश व हवास बिलकुल ठीक थे । मैं पढ़ने बैठी थी और पहुँच गई कहीं से कहीं ।

देखिए आप मुसकराइएगा नहीं । इसके बाद मैंने देखा कि एक नूरानी, जमाली और जलाली मख़लूक़ लाइन लगाए इस तरह सामने आई, जैसे वह किसी बहुत बड़ी हस्ती के इन्तिज़ार में हो । मुझे नहीं मालूम कि मैंने कैसे जान लिया कि यह जमाली और जलाली नूरानी मख़लूक़ फ़रिश्ते हैं ।

और फिर—? आप भी कहेंगे कि यह सब सपनों की बातें हैं, मगर भई मैं तो खुली आँखों से देख रही थी । अच्छा ख़ैर आप कुछ कहें, मैं बताती हूँ कि फिर एक बहुत-ही हलका और नूरानी तख़्त आया और सारे संसार पर छा गया । मैं आँखें फाड़-फाड़कर देखने की कोशिश करने लगी कि इस तख़्त पर कौन विराजमान है । मैं उसे देख न सकी ! देख कैसे सकती थी । जब उसका तख़्त देखने से मेरी आँखों में चका चौंध-सी हो जाती थी तो तख़्तवाले का नज़ारा करना मेरे बस का न था, हाँ मैं यह कह सकती हूँ कि वह 'कोई' सबसे बड़ा था और फिर जब मैंने देखा कि आसमान और आसमान की सारी चीज़ों ने, ज़मीन और ज़मीन की सारी चीज़ों ने, फ़िज़ा और फ़िज़ा की सारी चीज़ों ने काँपते हुए सजदा किया, तो मैं समझ गई कि यह तख़्त हक़ीक़त में 'अर्श' है । और अर्श पर ख़ुदा साहिबे ज़ुल जलाल वल इकराम तशरीफ़ फ़रमा है, सिर्फ़ मैंने नहीं मेरी रूह ने भी सजदा किया ।

मैं अर्श को देख रही थी । मैं फ़रिश्तों को भी देख रही थी । आसमान, ज़मीन और सारी चीज़ों को देख रही थी । लेकिन मुझे बेचैनी के साथ हैरत थी कि इस सारी मख़लूक़ में हज़रते इनसान कहीं नज़र नहीं आते । यह ख़याल शायद बेचैनी के साथ इसलिए आया कि मैं ख़ुद इनसान हूँ । फिर मैंने यह कहकर अपने को मुतमइन कर लिया कि ऐसे-ऐसे बड़ों में यह पाँच-छः फ़िट का इनसान कहीं न कहीं होगा ज़रूर, मगर इतनी बड़ी चीज़ों के ढेर में नज़र ही कब आएगा, कहीं किसी पहाड़ के दामन में छिपा होगा या कहीं किसी जंगल की झाड़ियों में बैठा होगा । ऐसी-ऐसी मख़लूक़ में उसकी हैसियत ही क्या ?

यह ख़याल आते ही मैं कुछ झेंप भी गई । इनसान हूँ न, इसलिए मुझे शर्म महसूस हुई । ऊँह, मैं भी ख़ूब हूँ, क्या कह रही थी । बीच में अपने कमज़ोर होने की बात करने लगी, मगर सच्ची बात सच्ची ही है । मुझे सारी मख़लूक़ के मुक़ाबले में इनसान की बेचारगी पर तरस आ रहा था ।

अचानक एक बिजली-सी चमकी । बिजली नहीं, बिजली में तो तड़तड़ाहट और कड़क होती है । यह जो चमक हुई थी, इसमें दहशत नहीं थी । हाँ, इसे यूँ कहिए कि अचानक एक नूर चमका । इस नूर की चमक से न किसी की आँखें चका-चौंध हुईं और न दिल दहला । मैंने देखा, मैंने ही क्या आसमान ने और

ासमान की तमाम चीज़ों ने, फ़िज़ा ने और फ़िज़ा की सारी चीज़ों ने, ज़मीन और ज़मीन की सारी चीज़ों ने और हाँ, फ़रिश्तों ने भी देखा कि इस नूर से क क़लम पैदा हुआ और उसने अर्श के नीचे फ़िज़ा में बड़े शब्दों में लिख दिया :

'इख़तियारात और ज़िम्मेदारी'

"क्या मतलब ?" मेरी ज़बान से निकला। आसमान, ज़मीन और जो कुछ हाँ मौजूद था हर एक बोल उठा, "क्या मतलब ?" फ़रिश्ते भी सवालिया निशान नकर रह गए।

आवाज़ आई—"हम अपने इख़तियारात में से तुम्हें कुछ देना चाहते हैं।"

आवाज़ क्या थी एक शाहाना बख़शिश और नवाज़ने का अन्दाज़ था। सारी ख़लूक़ यह अन्दाज़े करम देखकर सजदे में गिर गई।

"ऐ हमारे पैदा करनेवाले ! ऐ हमारे मेहरबान मालिक ! तू बख़शिश और फ़ज़्लवाला ;, जिसे जो चाहे बख़्श दे।"

सारी मख़लूक़ सजदे में यह अर्ज़ कर रही थी। इसके बाद जब सब सजदे े उठे तो सुना—

"लेकिन इन इख़तियारात के साथ इनकी ज़िम्मेदारी भी अदा करनी होगी।"

सब कहने लगे, "ऐ बहुत ज़्यादा इल्मो हिकमतवाले! जिम्मेदारी का मतलब म नहीं समझे।"

"हम चाहते हैं कि हमारे बन्दों में से कोई बढ़कर हमारे बख़्शे हुए कुछ इख़तियारात अपने हाथों में ले, और फिर भी हमारा बन्दा बना रहे।"

"वरना ?"

आपसे-आप मेरी ज़बान से निकल गया और सारी मख़लूक़ भी यही शब्द बोल गई।

मैंने सुना सबने कहा, "वरना ऐ सबसे बड़े रहम करनेवाले !"

"हमारे बख़्शे हुए इख़तियारात पाकर अगर हमारा बन्दा, हमारा बन्दा बना रहेगा तो वह हमारा ख़लीफ़ा कहलाएगा और हम उसे अपनी ख़ुशी और सलामती के घर में रखेंगे।"

अचानक सबने देखा, जन्नत अपने बहुत ज़्यादा बनाव-सिंगार और नेमतों के साथ सामने आ गई।

"दाता ! यह हमें दे दो।" सबने कहा।

"पूरी बात सुनो । लेकिन इख़तियार पाकर जो बन्दा अपनी मनमानी करेग और हमारा बन्दा बनकर न रहेगा तो उसकी सज़ा भी देख लो ।"

अचानक सबने देखा । जहन्नम अपनी तमाम हौलनाकियों और अज़ाबों के सा सामने आ गई ।

"ऐ सबसे बड़े मेहरबान ! यह हमें नहीं चाहिए ।" सबने कहा और यह कहक सजदे में गिर गए, फ़िज़ा ख़ामोश हो गई ।

मैं सोचने लगी अब क्या होगा । अल्लाह रब्बुल इज़्ज़त का हुक्म, क्या उसक हुक्म यूँ ही रह जाएगा । ऐसा नहीं हो सकता । अल्लाह का हुक्म ज़रूर अमल में आएगा, मगर मैं यह देख रही थी कि सारी कायनात को जैसे जहन्नम के अज़ाब ने सूँघ लिया हो । कोई हिम्मत ही नहीं कर रहा था ।

"है कोई हमारा बन्दा ।"

अब भी सब चुप थे । अचानक एक तरफ़ हरकत-सी पैदा हुई । सबके पीछे से एक साया हिलता हुआ आता दिखाई दिया । मैंने देखा यह तो मेरी ही तरह का पाँच-साढ़े पाँच फ़िट का इनसान है । मैं मुस्कराई, आसमान और ज़मीन की सारी चीज़ों ने उसका मज़ाक उड़ाया ।

लेकिन यही कमज़ोर-सा इनसान सारी भीड़ को चीरता हुआ आगे बढ़ा । फिर न जाने कैसे ऊपर उठा और इन नूरानी शब्दों को आँखों से लगा लिया ।

"कैसा नादान है यह इनसान ! कैसा जल्दबाज़ है यह आदमी ! कैसा जाहिल है यह शख़्स ! ज़िम्मेदारी का यह बोझ उठा सकेगा ?

सारी कायनात इनसान के इस अमल पर हँस दी । लेकिन वही इनसान जब 'इख़तियारात और ज़िम्मेदारी' के नूरानी शब्दों को चूमकर अपनी जगह आ रहा था तो सबने देखा आसमानों की सारी ऊँचाइयों, ज़मीन की सारी गुंजाइशों और फ़िज़ा की सारी कुशादगियों का बोझ उसके सिर पर रखा था । कायनात की ज़बान बन्द होकर रह गई । मैं अपनी जगह हैरत के साथ यह मनज़र देख रही थी । मुझे अपनी ही तरह के इस इनसान पर रहम आने लगा ।

फिर न जाने कैसे मुझे ख़याल आया कि यह शख़्स (मर्द) मेरी मदद (औरत) के बग़ैर इस बोझ को लेकर न चल सकेगा । मदद के इस जज़बे ने मेरे अन्दर उसकी मुहब्बत और हमदर्दी पैदा कर दी । फिर मेरा ख़याल बिलकुल ठीक मालूम होने लगा । इनसान इस बोझ को लिए अपनी जगह नहीं पहुँचा था कि बीच रास्ते ही में उसके पैर काँपने लगे । मुझसे न देखा गया । मैं उसकी मदद के लिए बेचैन हो गई और मैंने बढ़कर अपना कंधा लगा दिया ।

वह मर्द मेरी मदद पाकर ख़ूब मज़बूत और हिम्मतवाला हो गया । अब वह इस तरह जा रहा था जैसे कोई फूल उठाए लिए जा रहा हो ।

"अरी मरयम ! इतनी देर हो गई, तूने ज़रा-से शेर का मतलब न लिखा", भाई जान ने जो मुझे डाँटा तो फ़ौरन चौंक पड़ी ।

"लिखती हूँ भय्या !" और यह कहकर मैंने जल्दी-जल्दी लिखा ।

अस्ल में मीर तक़ी मीर ने यह ख़याल एक फ़ारसी शेर से लिया है । मीर को फ़ारसी का वह शेर पसन्द आ गया । चूँकि शायर बेबदल थे इस लिए इस तरह उर्दू के साँचे में ढाला कि पता नहीं चलता कि तर्जुमा है ।

मतलब यह है कि जिस बोझ को देखकर सारी कायनात ने कानों पर हाथ रखा कि हम से न उठेगा ।

मीर साहब फ़रमाते हैं—

तुम पे जिस बार ने गिरानी की ।
उसको यह नातवाँ उठा लाया ॥

जिस बोझ का ज़िक्र इस शेर में है, इससे मतलब वही अमानत का बोझ है जिसका ज़िक्र फ़ारसी शेर में है । यानी इख़तियारात जो अल्लाह तआला ने इनसान को बख़्शे और वह ज़िम्मेदारी जो उस के सर डाली गई है मज़हबी ज़बान में इस सियासत का नाम 'ख़िलाफ़त' है ।

क़ुरआन में है—"मैं ज़मीन में एक ख़लीफ़ा बनानेवाला हूँ ।"

इससे मेरी बातों की ताईद होती है । मतलब यह है कि इनसान अल्लाह की दी हुई चीज़ों को अल्लाह के दिए हुए इख़तियारात के अन्दर इस्तेमाल करे । मनमानी न करे । अगर इख़तियार पाकर बन्दा, बन्दा ही बना रहेगा तो अल्लाह जन्नत देगा । और अगर इख़तियार पाकर घमण्ड में आ गया और ख़ुद को बड़ा समझने लगा तो जहन्नम का ईंधन बनेगा ।

जल्दी-जल्दी लिखकर मैंने भाई जान को शेर का मतलब दिखाया तो वे ख़ुशी से उछल पड़े । उन्होंने अपने हाथ की घड़ी खोलकर मेरे हाथ पर बाँध दी ।

—●—

2

अलीमुल्ला

"अब्बा मुझे धोखा दिया गया । आप फ़ौरन तशरीफ़ लाएँ वरना मैं कहीं भाग जाऊँगा ।"

—अलीमुल्ला (और आपका अलीमुल्ला)

इससे पहले कि मैं अपने अलीमुल्ला के इस ख़त के पीछे जो कहानी है, वह आपको सुनाऊँ, यह बता देना चाहता हूँ कि मैं अलीमुल्ला का बाप नहीं उसका बड़ा भाई हूँ । वह मुझसे चौबीस-पच्चीस साल छोटा है । अलीमुल्ला की पैदाइश के बाद माँ-बाप दो साल के अन्दर आगे-पीछे अल्लाह को प्यारे हो गए थे । और फिर उस बच्चे की परवरिश की ज़िम्मेदारी मुझपर और मेरी बीवी पर आ पड़ी थी । मेरी बीवी ने उसे दूध भी पिलाया । फिर जब वह ज़रा बड़ा हुआ तो मेरे अपने बच्चों की देखा-देखी या देखा-सुनी, अलीमुल्ला मुझे अब्बा और मेरी बीवी को अम्मी कहने लगा । इसके इस कहने का असर हम मियाँ-बीवी पर फ़ितरी तौर पर पड़ा कि हमें उससे ऐसी ही मुहब्बत हो गई जैसी अपने बच्चों से होती है । अलीमुल्ला, उसका नाम माँ-बाप ने रखा । लेकिन बचपन से उसकी उठान कुछ इस तरह की थी कि अगर उसे सही तालीम मिल जाती और वह किसी दारुल उलूम की हवा पा जाता तो एक बड़ा आलिम होता । लेकिन मेरे छोटे से गाँव में पहले कुछ मस्जिद में तालीम हासिल करता रहा, उसके बाद प्राइमरी स्कूल में दाख़िल कर दिया गया । वहाँ से फ़ारिग़ हुआ तो पास के क़स्बे में हाई स्कूल किया । हमारा इरादा था कि उसे उच्च शिक्षा दिलाएँ । लेकिन जब वह हाई स्कूल करके घर आया तो अचानक बीमार हो गया । फिर जब अच्छा हुआ तो उसे धुन सवार हुई कि गाँव में अपना एक मदरसा क़ायम करेगा, जिसमें ऐसी तालीम होगी जिसे हासिल करने के बाद एक छात्र दीन और दुनिया दोनों के काम का बनेगा । हम सबने बहुत समझाया कि यह बहुत बड़ा काम है, लेकिन वह चार-छः बच्चों और बच्चियों को लेकर घर के बाहरी कमरे में बैठ गया और उन्हें पढ़ाने लगा ।

मैंने जो कुछ बयान किया इससे मेरी मुराद यह है कि मेरे अलीमुल्ला की कहानी पढ़नेवाला यह समझ ले कि वह कैसा नेक लड़का था ।

अलीमुल्ला सिर्फ़ यही नहीं कि नेक था, वह जिस्मानी तौर पर बड़ी अच्छी

सेहत का मालिक और एक ख़ूबसूरत नौजवान था । अपने हुस्न व जमाल, सेहत और नेकी की वजह से वह थोड़े-ही दिनों में दूर-दूर मशहूर हो गया । अब उस पर लड़कीवालों की नज़रें पड़ने लगीं । दबे लफ़्ज़ों में मुझसे बहुत से लोगों ने अपनी-अपनी लड़कियों के बारे में कहा, लेकिन मैंने मिर्ज़ा शहाब अली बेग की पेशकश को क़बूल कर लिया । मिर्ज़ा साहब पोतड़ों के रईस और एक बहुत बड़ी जायदाद के मालिक थे । उनके कई लड़के और सिर्फ़ एक लड़की थी । इस लड़की के बारे में उन्होंने अपने एक दोस्त के ज़रिए कहलवाया । उनके दोस्त ने दबे लफ़्ज़ों में यह भी इशारा कर दिया कि अगर रिश्ता हो जाए तो अलीमुल्ला ने जैसा मदरसा क़ायम करने का इरादा किया है, वैसा मदरसा जल्द क़ायम हो सकता है । क्योंकि मिर्ज़ा साहब अपनी जायदाद का एक बड़ा हिस्सा लड़की के नाम कर देंगे ।

मैंने इस बारे में अपनी बीवी के ज़रिए अलीमुल्ला की राय मालूम की तो उसने शर्माकर कहा, "अम्मी ! जहाँ चाहो कर दो । मैं तो आप का बेटा हूँ ।" उसके इस जवाब के बाद एक हफ़्ते के अन्दर शादी हो गई । हक़ीक़त में मिर्ज़ा साहब ने नक़दी, ज़ेवरात और दूसरे सामान के अलावा तीस बीघा ज़मीन भी लड़की को दी और अपने बाग़ 'लखपेड़ा' के मुनाफ़े में छठा हिस्सा भी लिख दिया । इस छठे हिस्से के मुनाफ़े का हिसाब लगाया गया तो दो हज़ार, ढाई हज़ार, तीन हज़ार (जैसा मौसम हो) होता था । यह रक़म इतनी थी कि अलीमुल्ला अपना मदरसा शुरू में बड़ी ख़ूबी से चला सकता था । उसने किया भी यही । शादी के बाद ही एक माह के अन्दर-अन्दर जब बाग़ नीलाम हुआ तो चौथ की रक़म में से छठा हिस्सा लड़की के हाथ में रख दिया गया और वह रक़म लड़की ने अपने शौहर अलीमुल्ला को दे दी, और अलीमुल्ला ने दूसरे ही महीने अपनी मदद के लिए सौ रुपये माहाना पर एक अच्छे मौलवी को रख लिया । दीनियात की तालीम उसके ज़िम्मे की और ख़ुद दुनियावी तालीम देने लगा ।

दूसरे महीने जब उसे मदरसे की तरफ़ से ज़रा इतमीनान हुआ तो तीसरे महीने उसने वह ख़त लिखा जिसका एक हिस्सा मैंने ऊपर नक़ल किया है । ख़त पढ़कर मैं सोचने लगा कि अलीमुल्ला को किसने धोखा दिया, किस बारे में धोखा दिया, क्यों धोखा दिया, क्या मेरी ग़ैर मौजूदगी में किसी के साथ उसने रोज़गार में शिरकत की और शरीक ने रुपया मार लिया ? क्या मौलवी धोखा देकर चला गया ? क्या उसकी अम्मी (यानी मेरी बीवी) ने कुछ डाँट-फटकार दिया वग़ैरा ।

इस तरह के सवालात दिल ही दिल में करता हुआ मैं लखनऊ से फ़ौरन अपने गाँव पहुँचा । रास्ते में कुछ लोग मिले, उनसे ख़ैरियत पूछी । सबने मुझे हर तरह की ख़ैरियत का यक़ीन दिलाया । गाँव में आया तो यहाँ का माहौल शान्तिपूर्ण

पाया । उस वक़्त अलीमुल्ला अपने मदरसे में था । मैं सीधा घर पहुँचा, बीवी से हाल पूछा तो जैसे आतिश फ़िशाँ पहाड़ (ज्वालामुखी पर्वत) में पानी पड़ जाए और वह भड़क उठे और फट जाए, ज़िन्दगी में पहली बार मेरी बीवी और अलीमुल्ला की अम्मी मुझ पर बरस पड़ीं :

"न ठीक से देखा, न कुछ जाँच पड़ताल की और लड़के की गर्दन धन-दौलत के शिकंजों में कस दी । मैं कहती थी कि चट मँगनी पट ब्याह मत करो, मगर तुम हो कि किसी की सुनते कब हो । अब लो पीटो अपना सिर !"

बीवी इसी तरह देर तक झींकती और मुझे नासमझ कहकर सख़्त-सुस्त कहती रही । मैं उसके चेहरे के उतार-चढ़ाव को ग़ौर से देख रहा था । उसकी गर्दन ग़ुस्से में कभी फूल जाती, माथे पर शिकने ज़्यादा हो जातीं और चेहरा सुर्ख़ हो जाता और कभी संजीदा । एक बार वह ज़रा ठहरी तो मैंने पूछा :

"तुमने ग़ुस्सा तो इतना कर लिया, लेकिन यह नहीं मालूम हुआ कि बात क्या है, 'इशरत' कहाँ है ?"

"वह अपने मायके में है । तीसरे चाले के बाद अलीमुल्ला उसे लेने नहीं गया और मुझे भी सख़्ती के साथ रोक दिया ।"

"क्यों ?"

मेरे क्यों कहने पर बीवी ने मुझे इस तरह घूरा कि मैं घबरा गया । उसने कहा :

"शादी के बाद तुमने कुछ महसूस किया था कि नहीं कि अलीमुल्ला ज़रूरत से ज़्यादा संजीदा रहने लगा था ।"

"हाँ, हाँ ! वह शर्मीला तो है ही । नेक लड़का शादी के बाद ऐसा ही हो जाता है ।"

"तुम्हारी शर्म जाए भाड़ में, यह उसकी शर्म नहीं थी, एक ग़म था जिसे वह दबाने की कोशिश कर रहा था ।"

"ग़म ! ग़म कैसा ?"

"मुझे तो मालूम नहीं था । एक दिन नादान मुझसे बोला, "अम्मी तुम्हारे बदन से एक तरह की ख़ुश्बू फूटती है, लेकिन इशरत..... !"

"हट बेग़ैरत ! शादी होते ही बेशर्म बन गया ।" और फिर मैंने बुरी तरह उसे झिड़क दिया । "मैं तेरी माँ हूँ, भाभी नहीं ।" अलीमुल्ला आँखों में आँसू भर लाया और उदास होकर मेरे पास से चला गया ।

"इशरत में क्या बात देखी उसने । अच्छी ख़ासी गोरी-चिट्टी लड़की है । मुझे

अब भी यह मालूम है कि वह बड़ी अच्छी आदत की है । नमाज़-रोज़े की बन्द होने से साफ़-सुथरापन भी उसमें है । सबसे बड़ी बात यह है कि वह एक ड़े बाप की बेटी है, इत्र वग़ैरह भी इस्तेमाल करती है, बेज़बान भी है ।"

"यह सब कुछ है मगर—"

"हाँ, हाँ बताओं चुप क्यों हो गई ?"

"तुमने देखा नहीं कि वह नक बैठी है ।"

"तो इससे क्या होता है । बहुत सी लड़कियों की नाक पर पहिया फिरा होता ।"

बस यही वह राज़ है जिसका पता तुमने नहीं लगाया और एक हफ़्ते में बात क्की करके अलीमुल्ला के गले में बदबू का तोबड़ा लटका दिया ।

"यह तुम क्या कह रही हो ।"

"पूरी बात सुनो, अलीमुल्ला के दोस्त अब्बास की बीवी ने बताया । उसने ब्बास से कहा और अब्बास ने अपनी बीवी से । उसकी बीवी ने मुझसे ।

"क्या ?"

"अलीमुल्ला ने अब्बास से एक दिन कहा, यार ! मेरी बीवी अपने मुँह के रीब मेरा मुँह आने नहीं देती, और जब मैं उसके पास होता हूँ तो वह अपना ख़ मुड़ा-मुड़ा-सा रखती है । अब्बास ने जवाब दिया कि वह सेहत के उसूलों र अमल कर रही होगी । डाक्टरों ने मना किया है कि नाक आमने-सामने नहीं ोनी चाहिए ताकि एक की साँस से दूसरे को नुक़सान न पहुँचे ।"

पहले तो अलीमुल्ला भी यही समझा, लेकिन जब उसे मालूम हुआ कि बात छ और है तो मुझसे कहने लगा, 'अम्मी !' और चुप होकर खड़ा हो गया । ने पूछा कि क्या बात है ? वह चुप खड़ा रहा । मैंने कहा, "अच्छा, जाती , इशरत को ले आऊँगी—तुम कहीं जाना नहीं ।"

"न, न अम्मी !" वह घबराकर कहने लगा । अब इशरत को मत लाना ।"

"क्यों ?" मैंने पूछा ।

बड़े अदब से कहने लगा । "अम्मी ! मेरी बेग़ैरती माफ़ फ़रमाइएगा । मैं आपसे । कहूँ तो किसके सामने दुखड़ा रोऊँ । इशरत को नतफ़ुल अनफ़ की बीमारी है । यह बात मुझे अच्छी तरह मालूम हो चुकी है । एक डाक्टर ने मुझे बताया कि इस बीमारी से बचना चाहिए । मैंने नतफ़ुल अनफ़ का मतलब पूछा तो कहने लगा कि यह नाक की बीमारियों में से एक रोग है, इसके पैदा होने की बहुत-सी वजहें

हैं । इशरत को यह बीमारी उसकी बारह साल की उम्र से लगी है ।

"कैसे ?" मैंने अलीमुल्ला से पूछा । उसने कहा, "इशरत एक दिन 'लखपेड़ा बाग़ की सैर को गई थी । वहाँ बाग के पक्के तालाब में अपनी सहेलियों के सा नहाई । एक छोटी सी जोंक उसकी नाक में चली गई । उसे पता न चला । कु दिनों के बाद दिन में दो-दो, तीन-तीन बार उसकी नाक से ख़ून आने लगा इलाज होता रहा, लेकिन कोई डाक्टर उसका मर्ज़ न पहचान सका । एक अता ने सफ़ूफ़ नास ढेर-सा सुँघा दिया । नास सूँघते ही इशरत को छींक आई औ एक मोटी सी जोंक उसकी नाक से ज़मीन पर आ गिरी और ख़ून इस तरह इशर की नाक से बहने लगा कि थमने का नाम ही न लेता था । अब उसका इला हुआ, ख़ून थम गया, लेकिन साँस से बदबू आने का रोग लग गया । लोगों मुझे यह कहकर डरा दिया है कि अगर उसके क़रीब रहा तो बीमारी लग जा का ख़तरा है और यह भी कि आगे चलकर बीमारी फिर लौट आई तो नाक फू भी सकती है । नाक के गुदूद बढ़ सकते हैं, वाौरह, वाौरह ।"

अब तुम ही बताओ, तुमने दौलत देखकर, बड़ा घर देखकर कुछ भी खुल आँखों से न देखा, न किसी से पूछा । खड़ी सवारी ब्याह लाए । अब तो वा कह रहा है कि इशरत की उसे ज़रूरत नहीं हैं ।

'ऊँ.....हूँ !' मैंने एक लम्बी साँस ली । सिर झुकाकर सोचने लगा, क्या करन चाहिए ? देर तक कोई फ़ैसला न कर सका तो उठा ।

"कहाँ चले ?" बीवी ने पूछा ।

"इशरत को लेने ?"

"मगर सुनिए तो, देखिए ना समझी की बात न कीजिए, सुनिए तो ज़रा—!"

मैंने सुनी अनसुनी कर दी । मिर्ज़ा जी के घर पहुँचा । उन्होंने बड़ी इज़्ज़त से मेरा इसतिक़बाल किया । ख़ैरियत पूछी । ख़ूब ख़ातिर की । फिर अचानक आने की वजह पूछी । मैंने कहा कि अब की बार इशरत को मैं ले जाऊँगा ।

'माशा अल्लाह !' अलीमुल्ला का बड़ा साला मिर्ज़ा सोहराब बेग मुस्करा दिया सब हँसने लगे । मैं इशरत को लेकर घर आया । यहाँ अलीमुल्ला अपने मदरसे से आ चुका था । उसकी मौजूदगी में मैंने बीमारी का सारा क़िस्सा इशरत के सामने दोहरा दिया । इशरत बड़ी सीधी और भोली लड़की थी, वह इक़रार करती रही । उसने बताया कि इसी बीमारी की वजह से वह इत्र (ख़ुश्बू) का इस्तेमाल ज़्यादा करती है ।

मैंने उससे अलीमुल्ला के उन अन्देशों का ज़िक्र किया कि यह रोग शौहर को

भी हो सकता है और इसी डर से वह तुमसे दूर-दूर रहता है ।

"हाँ, मुझे मालूम है, उनकी नफ़रत सही है ।"

"दो फिर क्या हो ?"

उसने कहा ! "अब्बा मेरी गुज़ारिश है कि आपने जिस इज़्ज़त के साथ मुझे अपने दौलत ख़ाने में पनाह दी है, उसी तरह मैं पनाह की दरख़ास्त करती हूँ । अगर ये (उसने अलीमुल्ला की तरफ़ इशारा किया) मुझे तलाक़ दे दें तो यह उनके हक़ में सही होगा, हक़ीक़त में आप लोगों को धोखे में रखा गया । मैंने अपनी एक सहेली से कहलवाया भी कि मेरे इस रोग को बता दिया जाए, मगर मेरे माँ-बाप और भाइयों ने डाँट दिया । उनका कहना था कि दौलत से यह बीमारी अगर नही मरती तो दामाद ज़रूर मारा जा सकता है ।....लेकिन मेरा दिल कह रहा था कि दौलत ज़्यादा दिनों तक मेरा साथ न दे सकेगी । आख़िर वही हुआ । लेकिन मैं एक ख़तरे से उन्हें बाख़बर कर दूँ, अगर मुझे तलाक़ हो गई तो मेरे भाई उन्हें ज़िन्दा नहीं छोड़ेंगे । इसलिए मेरी राय है कि मुझे इस घर में पड़ा रहने दें और आप इनकी दूसरी शादी कर दें । मैं इस नई आनेवाली को अपनी जायदाद में से आधी भेंट कर दूँगी । मेरे लिए इतना ही बहुत होगा कि मैं किसी की बीवी हूँ । रहे मेरे जज़बात तो..... !"

इशरत आगे कुछ न कह सकी । वह फूट-फूटकर रोने लगी । हमारे घर में यह उसकी पहली आवाज़ थी जो सुनी गई । मालूम होता था जैसे वह यह सब कहने के लिए तक़रीर तैयार कर चुकी थी और मंसूबा बना चुकी थी । उसकी साफ़गोई, सच्चाई, शराफ़त और सूझ-बूझ और फिर रोने से हम सब पर बहुत असर हुआ । आँसू हम सबकी आँखों में भी आ गए । मैंने अलीमुल्ला से पूछा अब कहिए क्या फ़रमाते हैं ?

अलीमुल्ला उठकर बाहर चला गया । फिर मुझे अपनी बीवी से मालूम हुआ कि वह न तलाक़ देगा न दूसरी शादी करेगा और न इशरत के पास जाएगा ।

अलीमुल्ला की इस हरकत से हम सब परेशान हो गए । लेकिन यह उसकी बेवकूफ़ी न थी । उसे मालूम हो चुका था कि अगर इशरत को उसने किसी तरह भी तकलीफ़ दी तो ज़मीन में ज़िन्दा दफ़न करा दिया जाएगा । अब्बास ने उसे बताया था कि भई बड़ी ऊँची जगह क़िस्मत लड़ी है, मगर सौदा महँगा पड़ेगा ।

मैंने यह ख़तरा महसूस करके इशरत से पूछा तो उसने, " हाँ ! यह मैंने भी सुना है", कहा, फिर आह भरकर कहने लगी, "काश मेरे घरवाले भी शौहर को दूसरी शादी कर लेने पर राज़ी हो जाएँ ।" मैं इशरत को लेकर उसके बाप के

घर गया । सारी बातें दोहराईं, अफ़सोस इशरत के घरवाले यह सुनते ही ग़ुस्से हो गए । वे इशरत के कहने पर भी नर्म न हुए । फिर क्या हुआ ?

यह एक दुख भरी कहानी है । एक ऐसे नौजवान की जो बड़ा नेक था औ धीरे-धीरे क्या बनता चला गया । कुछ दिनों तक अलीमुल्ला फ़ितरत से जंग करत और ख़्वाहिशों को दबाता रहा । उसने ख़्वाहिशों को मारने की क्या-क्या तदबीं सोचीं, यह सब तो मुझे मालूम नहीं । हाँ, एक दिन हकीम अब्दुल वासे साहब मेरे पास एक ख़त लेकर आए । मुझसे कहा पढ़िए, यह ख़त अलीमुल्ला का लिख हुआ था । लिखा था—

"हकीम साहब ! क्या कोई ऐसा नुस्ख़ा भी है, जिससे मर्दाना ताक़त हमेश के लिए ख़त्म हो जाए ।"

मैंने यह ख़त पढ़कर हकीम साहब को दे दिया । उन्होंने क़िस्सा पूछा तो मैं बता दिया । हकीम साहब ने सख़्ती से जवाब लिखा कि ख़बरदार ! ऐसी को दवा कभी इस्तेमाल न करना । यही वह कुव्वत है जिसकी बिना पर इनसान ं हौसला, इनसानियत और न जाने क्या-क्या है । मैंने भी एक ख़त लिखा औ हकीम साहब को देकर कहा कि लिफ़ाफ़े में यह भी रख दीजिएगा ।

मुझे बाद में एहसास हुआ कि नफ़सियाती एतबार से अलीमुल्ला को यह नहं मालूम होना चाहिए कि उसके अब्बा उसके एहसास जानते-बूझते हैं । मेरी बीवं ने मुझे लिखा कि अब वह चिड़चिड़ा होता जा रहा है । उसके बाद मालूम हुअ कि उसे मदरसे से भी कोई दिलचस्पी नहीं रही, फिर मालूम हुआ कि उसने नमाज़ छोड़ दी और फिर जब मैं घर गया तो देखा कि उसकी दाढ़ी मुँड़ी हुई है । मैं हाल पूछा तो पहली बार मेरी आँखों में आँखें डालकर कहने लगा, "मैं यह दीनदार लेकर क्या चाटूँ । ज़हूर को देखिए, अव्वल नम्बर का बदमाश है लेकिन किस मज़े से ज़िन्दगी गुज़ार रहा है । कैसी अच्छी उसे बीवी मिली है । मुझमें आपं क्या बुराई देखी, मैंने कब ख़ुदा से बग़ावत की, लेकिन ख़ुदा ने मुझे किस बात का बदला दिया" और आख़िर में यह शेर यों पढ़ दिया—

"शामते आमाल मा सूरते बीवी गिरफ़्त"

मैं समझ गया कि अलीमुल्ला अब बग़ावत पर आमादा है । ख़ुदा के ख़ौफ़ के बदले उसके दिल में ग़म और ग़ुस्सा है और वह यह समझ रहा है कि ख़ुद ने उसे इस जाल में फँसा दिया है । मैं इशरत को लेकर सीधा मिर्ज़ा साहब कं ख़िदमत में वापस गया । मैंने और इशरत ने मिलकर गुज़ारिश की कि हँसी-ख़ुशं अलीमुल्ला को दूसरी शादी कर लेने दें । लेकिन चंगेज़ ख़ाँ की औलाद ने साफ़ कह दिया कि हम इसे बरदाश्त नहीं कर सकेंगे । मैं इशरत को लेकर वापस चल

आया, और किसी से कुछ कहे-सुने बग़ैर अपनी जगह लखनऊ आ गया ।

लखनऊ से मैं पूरे तीन माह तक घर नहीं गया । तीन माह के बाद घर से तार आता है कि फ़ौरन आइए । मैं घबरा कर भागा । घर गया तो मालूम हुआ कि अलीमुल्ला इशरत की ख़ालाज़ाद बहन नज़ाकत जहाँ को भगाकर ले गया है और नज़ाकत जहाँ अपने साथ अपना सारा ज़ेवर ले गई है ।

मैं तो जानता था कि यही होगा । "अब मैं क्या करूँ !" मैंने बीवी से कहा । मेरी आँखों से टप-टप आँसू गिरने लगे । आह मेरा अलीमुल्ला !

मैंने इशरत से कहा बेहतर हो कि अब भी तुम्हारे भाई-बन्द दूसरी शादी कर लेने दें, वरना अलीमुल्ला अब इनसान न रह सकेगा ।

इशरत ने मेरी हाँ में हाँ मिलाई और हम दोनों फिर मिर्ज़ा साहब के पास गए । वह हमें देखते ही ग़ुस्सा हो गए । "दूर हो बदमाशो ! मेरी नज़रों से ।" और उन्होंने फाटक बन्द कर लिया । इशरत ने कहा चलिए, जो क़िस्मत में लिखा है वह होकर रहेगा । और क़िस्मत का लिखा यूँ सामने आया कि किसी ने बताया, अलीमुल्ला आजकल बम्बई में है । नज़ाकत जो ज़ेवर साथ ले गई थी वह सब ख़त्म हो गए तो अलीमुल्ला ने नज़ाकत को पाँच सौ रुपये में बेच दिया । और अब वह आवारा घूम रहा है । मैंने पता पूछा । पता मालूम होने पर मैंने अलीमुल्ला को ख़त लिखा कि वह अब मिर्ज़ा साहब की पहुँच से दूर है । वहीं इशरत को बुला ले और वहीं अपनी मर्ज़ी से दूसरी शादी कर ले । ख़र्च की सारी ज़िम्मेदारी इशरत बर्दाश्त करने को तैयार है ।

इस ख़त का जो जवाब आया वह इबरत हासिल करनेवालों के सामने बयान करता हूँ । अलीमुल्ला ने लिखा—

"अब्बाजान ! मिर्ज़ा साहब से फ़रमा दीजिए कि अब मैं रोज़ एक शादी करता हूँ और घंटे दो घंटों में तलाक़ दे देता हूँ । इस शादी और तलाक़ में मेरे सिर्फ़ दस रुपये ख़र्च होते हैं ।"

यह अलीमुल्ला मेरा वही भाई था जो कभी मुझसे अपनी बीवी का हाल बताने की हिम्मत नहीं करता था । और अब यही मेरा अलीमुल्ला था कि इस बेबाकी से उसने यह सब लिख दिया ।

दुनिया खुली आँखों से यह सब देखती है लेकिन अलीमुल्ला को कुछ नहीं कहती । लेकिन इसी दुनिया के सामने जब यह बात रखी गई कि अलीमुल्ला को एक बीवी की मौजूदगी में दूसरी बीवी कर लेने दो तो दुनिया के माथे पर बल पड़ गए और उसने ग़ुस्सा होकर कहा, "यह पहली बीवी पर सरासर ज़ुल्म है ।"

ऐ समझवालो ! कुछ तो इबरत पकड़ो !

3

सकीना

माहनामा 'सुधार' के लेख पढ़कर उस के दिल पर बड़ा असर हुआ । वह सोचने लगी कि मैंने अपनी माँ का कुछ भी हक़ अदा न किया । उसने दिल में पक्का इरादा कर लिया कि अब वह अपना रंग-ढंग बदलेगी और उससे जहाँ तक हो सकेगा अपनी माँ, बहनों और भाइयों के सारे हक़ अदा करेगी । सबकी ख़िदमत करेगी । उसने फ़िल्म देखने और ग़लत क़िस्म के गाने सुनने से तौबा की और जब उस दिन उसकी माँ ने उसे घर के मामलों में दिलचस्पी लेते और घरवालों की ख़िदमत करते देखा तो बलाएँ ले-लेकर ढेरों दुआएँ दे डालीं । माँ की दुआएँ पाकर वह इतना ख़ुश हुई कि वह इतना ख़ुश कभी नहीं हुई थी । माँ की दुआओं के बोल सुनकर उसे ऐसा मज़ा आया कि उसे अपनी सहेलियों की संगत और रेडियो के गानों में भी न आया था । उसने माँ से माहनामा 'सुधार' की तारीफ़ की, और माँ ने झट दस रुपये निकालकर उसके हाथ पर रख दिए, ताकि वह सालाना चन्दा (वार्षिक मूल्य) भेजकर ख़रीदार बन जाए । सकीना ने उसी वक़्त चन्दा भेज दिया, हर माह माहनामा 'सुधार' उसके नाम आने लगा और वह उससे ज़्यादा से ज़्यादा फ़ायदा उठाने की कोशिश करने लगी । वह जो कुछ पढ़ती उस पर अमल करती और इस तरह उसकी अच्छी ख़ासी तरबियत होने लगी ।

उसने एक काम और किया । उसने माहनामा 'सुधार' के एडीटर 'अदीब कामिल' से ख़त व किताबत भी शुरू कर दी । माहनामा की जो बात उसकी समझ में न आती वह तफ़सील से उसका जवाब मँगाती । एडीटर ख़ूब तफ़सील से उसके सवालों का जवाब देता और अपने जवाबों से उसे मुतमइन करने की कोशिश करता इसका बदला सकीना यह देती कि हर माह दो-एक ख़रीदार 'सुधार' के लिए हासिल करती । उसे माहनामा सुधार से ताल्लुक़ पैदा हो गया । इस रिश्ते से वह 'अदीब कामिल' की बड़ी इज़्ज़त करने लगी । बिना देखे इज़्ज़त । उसका ख़याल था कि 'अदीब कामिल' कोई तजुरबेकार और बड़ी उम्र का आदमी है । वह उसे चचा कहकर अपने ख़तों में मुख़ातब करती । हालाँकि दूसरी तरफ़ से भी वही घिसा-पिटा "मुहतरमा बहन ! अस्सलामु अलैकुम व रहमतुल्लाह" लिखा हुआ आता । सकीना उसे दफ़्तरी अलक़ाब व आदाब समझती । वह चाहती थी कि उसका यह चचा संजीदगी के अलावा कुछ बेतकल्लुफ़ाना अन्दाज़ इख़्तियार करे । मगर वह अपने इस ख़याल और इस चाह को ख़तों में न लिख सकी । और इस तरह महीने गुज़

ए । एक बार उसने लिखा कि चचा मियाँ ! आप का असल नाम क्या है और ाप किस शहर के रहनेवाले हैं ? उसका जवाब उधर से गोल-मोल ही आया । किना बराबर इस खोज में लगी रही ।

एक दिन उसे मालूम हुआ कि माहनामा 'सुधार' का एडीटर इसी शहर का हनेवाला है । अपना रिसाला वह यहीं तरतीब देता है । सिर्फ़ छपवाने और पोस्ट रने के लिए महीने में एक बार वह दिल्ली जाता है । एक हफ़्ता वहाँ रहकर ापस आता है । दफ़्तरी काम के लिए उसने दिल्ली में एक क्लर्क रख लिया ।

और फिर उसने पता लगा ही लिया कि 'अदीब कामिल' साहब का दौलतख़ाना स मुहल्ले में है । फिर एक दिन उसने माँ से इजाज़त ली और अपने छोटे भाई ो साथ लेकर माहनामा 'सुधार' के एडीटर जनाब अदीब कामिल साहब से मिलने ल दी । मुहल्ले में पहुँचकर बड़ी आसानी से एडीटर साहब का घर मिल गया । ख्य दरवाज़ा खुला हुआ था । उसने दरवाज़े में बिना किसी झिझक के पैर रख या । दाहिनी तरफ़ उसने एक कमरा देखा जिसमें कुछ कुर्सियाँ, मेज़ और एक लमारी में किताबें रखी नज़र आईं । कमरा बाहर से बन्द और अन्दर से खुला आ था । वह आगे बढ़ी । अन्दर एक कमरे से खाँसने की आवाज़ आई, वह ी कमरे में चली गई । उसने कमरे में एक बूढ़ी औरत को देखा । वह बीमार । सकीना सलाम करके उसके पास बैठ गई । अपनी पहचान कराई और बैठकर तें करने लगी ।

बूढ़ी औरत ने बातें करते-करते अपने बेटे की शिकायत शुरू कर दी कि वह ुकी कुछ परवाह नहीं करता । दवा वग़ैरह भी ठीक से नहीं लाता । बस अपने ाराम से आराम है उसे । हाँ, दोस्तों पर ख़र्च करता है ।

यह सुनकर सकीना को बड़ा दुख हुआ । उसने छोटे भाई को पैसे देकर बाज़ार जा और कह दिया कि हकीम जाँ बख़्श साहब के यहाँ से खाँसी की दवा ले ाए । उसने बूढ़ी औरत का बिस्तर, तकिया और फ़र्श साफ़ करके कूड़ा करकट लग रख दिया । बूढ़ी औरत उसकी इस ख़िदमत पर दुआएँ देने लगी । इतनी में भाई दवा ले आया । उसने दवा उस बूढ़ी औरत को पिलाई और फिर आने ा वादा करके और दुआएँ लेकर उठ खड़ी हुई ।

वापसी में उसकी नज़र अदीब कामिल के कमरे पर फिर पड़ी । वह न जाने ा सोचकर कमरे में गई । उसने मेज़ पर देखा । एक अधूरा मज़मून सा रखा ा दिखाई दिया । किसी ने मज़मून लिखते-लिखते किसी वजह से अधूरा छोड़ या था और इस तरह खुला छोड़कर शायद किसी ज़रूरत से अचानक उठ गया

था । सकीना ने अधूरे मज़मून की आख़िरी लाइन पढ़ी, लिखा था :

"वह बेटा बड़ा ख़ुशनसीब है जो अपने माँ-बाप को इस हालत में पाए कि वे बूढ़े हों और वह उनकी ख़िदमत करके जन्नत का हक़दार हो जाए ।"

सकीना यह पढ़कर सोचने लगी । यह मज़मून तो अदीब कामिल ही का हो सकता है । लेकिन इसका लिखनेवाला माहनामा 'सुधार' का एडीटर अदीब कामिल क्या ऐसा भी हो सकता है कि वह अपनी बूढ़ी और बीमार माँ को अकेला घर में छोड़ दे और ख़ुद यार-दोस्तों के साथ तफ़रीह करता फिरे । सकीना को बड़ा बुरा लगा । उसने इस मज़मून के आगे यह शब्द अपनी तरफ़ से लिख दिए :

"और वह बेटा बहुत बदनसीब है जो अपने माँ-बाप को इस हालत में पाए कि वह बूढ़े हों और वह जन्नत न हासिल करे बल्कि जहन्नम का हक़दार बने ।"

सकीना ने यह लिखकर अपने दस्तख़त कर दिए । उसके बाद घर आकर उसने एक बड़ा सा ख़त लिखा । अपने ख़त में उसने यह भी लिखा कि उसके नाम रिसाला भेजना बन्द कर दिया जाए । मैं ऐसे मज़मून लिखनेवाले का कोई मज़मून पढ़ना पसन्द नहीं करती जो लिखता कुछ है और करता कुछ है ।

रिसाला उसके नाम आना बन्द हो गया । सकीना पर अदीब कामिल के किरदार का इतना गहरा असर पड़ा कि वह सारे तामीर पसन्द अदीबों और शायरों से नफ़रत करने लगी । अब उसने अपने पढ़ने के लिए क़ुरआन, हदीस और सीरत व फ़िक़्ह की किताबों को पसन्द किया और उन्हीं से फ़ायदा उठाने लगी ।

सकीना एक हायर सेकेन्ड्री स्कूल के हेड मास्टर जनाब जमील साहब की लड़की थी । जुलाई आने पर जमील साहब का ट्रांसफर हो गया और वह अपने बाप के साथ लखनऊ चली गई । लखनऊ पहुँचकर उसे मालूम हुआ कि यहाँ औरतों के दीनी इजतिमाआत होते हैं । वह पाबन्दी से इन इजतिमाआत में जाने लगी । कुछ ही दिनों में वहाँ की औरतों से उसका मेल-जोल बढ़ गया । अपनी सीरत और बुलन्द अख़लाक़ की वजह से सकीना की इज़्ज़त की जाने लगी ।

यहीं एक साहब के कहने से उसकी शादी एक नेक और सेहतमन्द जवान अब्दुल्लतीफ़ से हो गई । वह अपने शौहर के साथ हँसी-ख़ुशी रहने लगी ।

उसका शौहर अब्दुल्लतीफ़ एक बहुत-ही अच्छा इनसान था । उसने अपनी नई नवेली दुलहन को किताब व सुन्नत से दिलचस्पी लेते देखा तो एक दिन मौजूदा दौर के तामीरपसन्द अदीबों की किताबें भी ख़रीद लाया । ख़ुशी-ख़ुशी बीवी को देने लगा लेकिन सकीना ने कहा—

"मेरे लिए क़ुरआन, हदीस और फ़िक़्ह की किताबें काफ़ी हैं । मैं इन अदीबों की किताबें नहीं पढ़ती ।"

"क्यों ?" अब्दुल्लतीफ़ ने हैरानी से पूछा ।

"क्योंकि ये अदीब लिखते कुछ हैं, करते कुछ हैं ।" यह सकीना का रूखा-सा जवाब था ।

यह जवाब सुनकर अब्दुल्लतीफ़ का अजीब हाल हो गया । सकीना ने उसकी यह कैफ़ियत देखी, लेकिन उसने कुछ परवाह न की, उसने बढ़कर सीरत की एक किताब उठा ली । उसे खोला और संजीदा सूरत बनाकर उसको पढ़ने में लग गई ।

अब्दुल्लतीफ़ थोड़ी देर बैठा उसे तकता रहा । फिर न जाने क्या सोचकर उठा, अपने कमरे में गया और वहाँ से एक पुरानी फाइल उठा लाया और सकीना के आगे डाल दी और फिर बराबर कुर्सी पर बैठ गया ।

"यह क्या है ?"

"एक ज़माना था जब मैं मज़मून लिखा करता था और मेरे मज़मून मुल्क-भर में बड़ी दिलचस्पी से पढ़े जाते थे ।"

"फिर आपने मज़मून लिखना क्यों छोड़ दिया ? मैंने तो आपको कुछ लिखते नहीं देखा ।"

"हाँ, अब मैंने वह मैदान छोड़ दिया ।"

"क्यों ?"

"ज़रा यह फ़ाइल खोलकर देखिए । मेरा आख़िरी मज़मून जो आज तक अधूरा पड़ा है इसके बाद मैंने कुछ नहीं लिखा ।"

"मैं यही तो पूछती हूँ कि आपने यह मैदान क्यों छोड़ दिया ।"

"आप देखें तो सही ख़ुद आपकी समझ में आ जाएगा ।"

इस बातचीत के बाद सकीना ने फ़ाइल खोली । अधूरा मज़मून देखकर वह चौंक पड़ी । वह हैरत के साथ अपने शौहर अब्दुल्लतीफ़ को देखने लगी ।

"जी हाँ !" अब्दुल्लतीफ़ कहने लगा—"एक ज़माना था जब मैं माहनामा 'सुधार' निकाल रहा था । यह उसी ज़माने का अधूरा मज़मून है जो आज तक पूरा न हो सका । आप देख रही हैं कि इस मज़मून के आख़िर में आप ही की मुहतरम नाम एक लड़की ने क्या लिखा है ?"

"जी हाँ देख रही हूँ । क्या मैं पूछ सकती हूँ कि फिर क्या हुआ ?"

"फिर यह हुआ कि जब मैंने वापस घर आकर अपनी बीमार माँ को देखा तो उनका बुरा हाल था । उन ही से मालूम हुआ कि सकीना नाम की एक लड़की आई थी, और उसने दवा पिलाई थी ।"

"फिर क्या हुआ ?"

"फिर यह हुआ कि मेरी माँ का उसी रात में इन्तिक़ाल हो गया । मुझ पर सकीना के लिखे हुए जुमलों का कुछ ऐसा असर हुआ कि मैं चुप-सा रहने लगा । फिर मैंने तौबा कर ली । रिसाला बन्द करने का ऐलान कर दिया और यहाँ लखनऊ चला आया । यहाँ आकर इस्लामिक यूथ आरगनाइज़ेशन के नौजवानों से मुलाक़ात की । इन नौजवानों को मैंने अपने ख़यालात के मुताबिक़ पाया और इनके साथ जनसेवा का काम अपने ज़िम्मे ले लिया । अब अल्लाह की तौफ़ीक़ से जो कुछ हो सकता है करता हूँ और जहाँ तक होता है अपना किया हुआ काम छिपाता हूँ । अल्लाह से नहीं, उससे कौन छिपा सकता है, जो ढका छिपा सब देखनेवाला और अच्छे काम करनेवालों का बदला पूरे तौर पर देनेवाला है । और यह सब इस लिए करता हूँ कि शायद अब मेरा मालिक मुझ से ख़ुश हो जाए और मेरे पिछले गुनाहों को माफ़ कर दे ।"

अब्दुल्लतीफ़ यह कहकर ख़ामोश हो गया और अन्दर ही अन्दर न जाने क्या कहा, जिसे सकीना न सुन सकी ।

"आपने सकीना को कोई जवाब दिया या नहीं ।"

"मैं क्या जवाब देता । मेरा पोल खुल चुका था । उसने एक तफ़सीली ख़त में मुझे बहुत बुरा-भला लिखा था । उसका यह ख़त अब भी मैं कभी-कभी पढ़ लेता हूँ ।"

"क्यों ?"

"इसलिए कि उसे पढ़कर मेरे अन्दर का शैतान मुझसे भागता है ।"

"इसका मतलब यह है कि अगर वह सकीना आप को मिल जाए तो शायद शैतान हमेशा के लिए आप से दूर हो जाए ।"

"ख़ुदा जाने वह ग़रीब अब कहाँ हो । अगर वह मुझसे मिलना चाहे तो शायद मैं कतरा जाऊँ ?"

"क्यों ?"

"मैं क्या मुँह लेकर उसके सामने आ सकूँगा ।"

"अगर वह ख़ुद आपके सामने आ जाए तो ?"

"तो मैं कुछ बात किए बग़ैर टल जाऊँगा ।"

"लेकिन अगर ख़ुदा को यह मंज़ूर हो कि आप उसे पाकर न टल सकें तो ?"

"क्या मतलब ?"

"मतलब यह कि वही सकीना इस वक़्त आप से बातें कर रही है ।"

अब्दुल्लतीफ़ ने 'अलहम्दुलिल्लाह' कहकर दुआ के लिए हाथ उठा दिए । दुआ करते वक़्त उसकी आँखों में आँसू थे : ख़ुशी के आँसू । दुआ के बाद उसने बीवी का हाथ थाम लिया और उसकी उँगलियाँ अपनी आँखों से लगा लीं । उसकी ज़बान से निकला ।

"इन्हीं उँगलियों ने वे अलफ़ाज लिखे थे जिन्होंने मेरी ज़िन्दगी का रुख़ मोड़ दिया—अलम्दुलिल्लाह ।"

—●—

4

कन्नू की माँ

कन्नू बहुत ख़ुश था । वह तैराकी में सबसे आगे निकला था । वह ख़ुश-ख़ुश पहले अपने बाप के पास गया । बाप उस वक़्त अपने दस-बारह साथियों के साथ एक बड़ी-सी नाव बनाने में लगा हुआ था । बेटे को ख़ुश देखकर वह भी ख़ुश हो गया और जब उसे मालूम हुआ कि बेटे ने तैराकी में पहला इनाम हासिल किया है तो बोला, "बेटा मुझे सच्ची ख़ुशी तो उस वक़्त होगी जब तुम ख़ुदा की फ़रमाँबरदारी के समुद्र में कूदो और सबसे आगे बढ़ जाओ और अपने अल्लाह से इनाम हासिल करो ।"

और यह कहकर बाप ने नाव में आख़िरी कील ठोंक दी । बाप की नसीहत कन्नू न समझ सका । वह वहाँ से माँ के पास गया और उससे अपनी कामयाबी का ज़िक्र किया । वह ख़ुश हो गई, "शाबाश बेटा ! शाबाश ! तुझ पर पाँच ख़ुदाओं का साया है । तुझे तो अव्वल आना ही चाहिए ?"

"अम्मी ! ख़ुदा की फ़रमाँबरदारी का समुद्र कैसा होता है ?" बेटे ने बाप से सुना हुआ जुमला माँ के सामने दोहरा दिया ।

"उहँ, तू किस की बातों में आ गया है, तेरे बाप का तो दिमाग़ ख़राब हो गया है । तू देखता नहीं, वह नाव बना रहा है । यहाँ रेत में नाव चलाएगा । कहता है कि मेरा कहना मानो । इन बुतों का सहारा छोड़ो । तुझे बताऊँ वह हमें किसके पास जाने से रोकता है, जिनकी वजह से तेरी ज़िन्दगी है ।"

"मेरी ज़िन्दगी ?" कन्नू कुछ न समझा, उसने पूछा, "अम्मी ! मेरी ज़िन्दगी किसकी वजह से है ?"

"बेटा, मैं बहुत सालों तक औलाद को तरसती रही । फिर जब उन पाँचों के आगे नाक रगड़ी तो तू पैदा हुआ ।"

"अच्छा ! अम्मी यह बात है, वे पाँच कौन हैं ?"

"यही हमारे ख़ुदा वद्द, सवाअ, यग़ूस, यऊक़ और नसर । फिर जब तू पैदा हुआ तो मैंने धूम-धाम से नज़रें पूरी कीं । तेरा बाप कितना नाराज़ हुआ । कहता था कि औलाद देनेवाला तो ख़ुदा है । मैं इस बात से इनकार कब करती हूँ लेकिन जब तक इन ख़ुदाओं को ख़ुश नहीं किया, मुराद पूरी नहीं हुई, औलाद से महरूम ही रही ।"

"तो बाप उनके पास जाने से मना करते हैं ?"

"हाँ बेटे ! सारी क़ौम तेरे बाप से नाराज़ है, कोई भी तो ख़ुश नहीं । कुछ ठठेरे हैं नीची जाति के जिनकी हमारी सोसाइटी में कोई इज़्ज़त नहीं । जिनको हम सब नीच समझते हैं । उनको वह अपने चारों तरफ़ लिए हुए है और उनको हम सबसे बढ़कर समझता है । दिमाग़ नहीं ख़राब हुआ तो और क्या कहा जाएगा ।"

"अम्मी ! हम तो इन ठठेरों के लड़कों के साथ खेलना भी पसन्द नहीं करते ।"

"हाँ बेटा ! इन नीच लोगों की तरफ़ होकर भी कभी न निकलना ।"

"कभी नहीं अम्मी ! कभी नहीं ।"

"और देखो बेटा ! (माँ का लहजा और बदला) बाप के चक्कर में न आना । तुम देखते हो तुम्हारे बाप की उम्र इतनी ज़्यादा हो चुकी है कि इस उम्र में अक़्ल ठिकाने नहीं रहती । अपने बाप की बहकी-बहकी बातें सुनते ही हो । वह अपने को ख़ुदा का रसूल कहता है । भला ख़ुदा का रसूल ऐसा होता है । ख़ुदा का रसूल ठठेरों को, इन नीच लोगों को अपना साथी बनाएगा—तुम्हारा बाप ख़ुदा का रसूल होता तो उसके आगे-पीछे, दाएँ-बाएँ फ़रिश्ते होते । अगर हम ख़ुदा के नबी के बारे में ज़बान से कोई बुरी बात निकालते तो हमारी ज़बान जल जाती । मगर तुम देख रहे हो कोई दिन नहीं होता जब क़ौम तुम्हारे बाप को बुरा न कहती हो, मगर किसी का एक बाल भी कभी बीका न हुआ ।"

"अम्मी ! आप ठीक कहती हैं । कल की बात है । सवाअ की घाटी में क़ौम के बड़े-बड़े लोग जमा थे, बाप अपने साथियों के साथ वहाँ जा धमके और लगे अपनी उड़ाने— 'ख़ुदा से डरो और मेरी इताअत करो ।' किसी ने सुनकर न दिया तो अज़ाब की धमकी दी कि अगर तुम मेरी बात न मानोगे तो पानी के तूफ़ान से बरबाद हो जाओगे । सब लोग हँसने लगे । भला पानी का तूफ़ान हमारा क्या कर लेगा । एक से एक तैराक क़ौम में मौजूद हैं ।"

"बेटा ! तुम्हारे बाप का दिमाग़ ख़सब हो गया है । कैसा पानी और कैसा तूफ़ान ?"

"यही तो सब लोग कहने लगे— 'इस रेगिस्तानी इलाक़े में कभी तो पानी बरसा नहीं । यहाँ पानी का तूफ़ान कैसे आ सकता है ?' इसके बाद ऐसा-ऐसा बेइज़्ज़त किया कि तौबा भली । ख़ुद वे अपने साथियों के साथ बेइज़्ज़त हुए । क़ौम के लोग तो इसी तरह रंग-रलियाँ मनाते रहे । किसी को कुछ भी तो नुक़सान न पहुँचा ।"

यही तो मैं कहती हूँ, मगर ज़िद्दी बुड्ढे की अड़ देखो, अपनी कहे चले जा रहा है, उसे ज़िद यह है कि 'बड़े-बूढ़ों से जो होता चला आया है उसे छोड़ दो और वह करो जो मैं कहूँ, क्योंकि मैं ख़ुदा का रसूल हूँ ।' भला कोई अपने घर

की बात और रस्म छोड़ देगा, अपना दीन-धर्म खो देगा ? यह कैसे हो सकता है ?''

''हरगिज़ नहीं हो सकता, नाक कट जाएगी अम्मी !''

माँ ने बेटे को गले से लगा लिया, उसी वक़्त एक औरत ने आकर कहा—

''ऐ कन्नू की माँ ! सुनती हो, अनहोनी बात !''

''क्या हुआ ?''

''बड़ी अजीब बात, जो कभी नहीं हुई ।''

''अरी बता तो !''

''बद्दन तन्दूर में आग जला चुकी थी कि अचानक उसमें से पानी उबलने लगा ।''

''अरे वाह, बिलकुल अनोखी बात !''

''और अब वह पानी उबलता ही चला आ रहा है ।''

''ऐसा ?''

''हाँ ! उसका घर पानी से भर गया और सारा सामान बरबाद हो गया ।''

ठीक उसी वक़्त एक घबराई हुई आवाज़ सुनाई दी, ''कन्नू बेटा ! ऐ कन्नू की माँ ! अपने सच्चे मालिक को पहचानो । ख़ुदा का अज़ाब आ गया । तूफ़ान की शुरुआत हो गई । मेरी बात मानो और मेरे साथ आओ, मैंने जो नाव बनाई है अब उसमें ही पनाह मिल सकती है ।''

कन्नू ने मुड़कर देखा, बूढ़ा बाप सामने खड़ा था । कन्नू ने हँसकर कहा—

''मैंने आप को बताया था कि मैं तैरने में अव्वल आ चुका हूँ ।''

''अरे बेटा ! जो तूफ़ान आ रहा है, वह तुम्हारे बस का नहीं ।''

''तो मैं पहाड़ पर चढ़ जाऊँगा ।''

''तूफ़ान वहाँ भी तुम्हें न छोड़ेगा ।''

''अच्छा-अच्छा, तुम जाओ, हम डूब जाएँगे मगर हम अपनी क़ौम के साथ रहेंगे ।'' कन्नू की माँ ग़ुस्से से बोली ।

''मैं आख़िरी बार समझाने आया हूँ, वह देखो आसमान पर बादल आना शुरू हो गए । सुन लो, आसमान से भी पानी बरसेगा और ज़मीन से भी सोते फूट बहेंगे । हर जगह पानी ही पानी हो जाएगा । पनाह की जगह सिर्फ़ वह नाव है जो मैंने और मेरे साथियों ने बनाई है, और उसमें वही सवार हो सकता है जो ख़ुदा पर, ख़ुदा के रसूल पर और आख़िरत के दिन पर ईमान लाए ।''

"अच्छा जाओ, जान न खाओ । हम अपनी क़ौम के साथ रहेंगे ।"

"सारी क़ौम तबाह हो जाएगी ।"

"हो जाने दो, तुम से क्या !"

माँ और बेटे दोनों ने सुनी अनसुनी कर दी । नसीहत करनेवाला मायूस होकर चला गया । उसके जाते ही बूंदें पड़ने लगीं । फिर पानी बरसने लगा और फिर मूसलाधार बारिश होने लगी । ज़मीन से भी सोते फूट निकले और देखते ही देखते वह जगह जहाँ ख़ुशकी ही ख़ुशकी थी, एक समुद्र में तबदील हो गई । सारी क़ौम डूब गई । एक नाव इसी समुद्र में तैर रही थी जिसमें अल्लाह का नबी अपने बारह सहाबा के साथ बैठा हुआ था और उसके हाथ दुआ के लिए उठे हुए थे यह थे हज़रत नूह अलैहिस्सलाम ।

5

ख़ुश क़िस्मत

"ऐ हारिस ! अब क्या होगा ? हमारा ऊँट तो....."

हारिस ने बीवी की बात का जवाब नहीं दिया । उसने नकेल ढीली कर दी । ऊँट बैठ गया ।

"आओ इस पर से सामान उतार लें ।" उसने बीवी से कहा और फिर दोनों सामान उतारने लगे ।

"ठीक उस वक़्त जबकि मँज़िल हमारे सामने है, हमारा ऊँट बीमार हो गया ।"

"दुख-बीमारी सब ख़ुदा के हाथ में है । हम क्या कर सकते हैं ।"

"क़बीले की औरतें शहर पहुँच चुकी होंगी, और उन्होंने रईस घरानों के बच्चे ले लिए होंगे ।"

बीवी की बात सुनकर हारिस सामने देखने लगा ।

"मेरा ख़याल है शायद वे सब वापस पड़ाव पर आ रही हैं, वरना पड़ाव पर यह चहल-पहल न होती ।"

"अब शायद ही हमें कोई बच्चा मिले ।" बीवी ने हाथ मलते हुए कहा ।

सामान उतर चुका था । हारिस ने ऊँट के कानों पर हाथ फेरा वे झुके हुए थे, उसकी गर्दन टटोली, वह तन रही थी । मुँह खोलकर उसकी ज़बान देखी वह ख़ारदार थी । पीछे जाकर ऊँट की दुम दबाई । ऊँट ने कोई गुदगुदी महसूस नहीं की ।

"हम बरबाद हो गए ।"

"क्या ऊँट मर जाएगा ।"

"कुछ नहीं कहा जा सकता ।"

"क्या मालूम था कि मँज़िल के सामने धोखा देगा ।"

"ख़ुदा की मरज़ी, ख़ुदा ही बेहतर जानता है । हमें पड़ाव तक चलना तो है ही । लाओ सामान मुझे दो और तुम नकेल थामो ।"

और यह कहते हुए शौहर ने सामान काँधों पर लादा । बीवी ने नकेल थामी । दोनों परेशान और मायूस इनसान की तरह पड़ाव की तरफ़ चले । पड़ाव पर पहुँच

कर देखा कि हक़ीक़त में कुछ औरतें शहर से वापस आ चुकी थीं और उनकी गोदों में बच्चे थे । कुछ आ रही थीं । एक औरत की गोद में एक सेहतमन्द बच्चा था और वह किसी बड़े आदमी का मालूम हो रहा था । उन दोनों को देखकर बोली—

"अल्लाह की क़सम ! मैं कामयाब लौटी । तुम्हारा ऊँट अब कैसा है ?"

"न जाने उसे रास्ते में क्या हो गया ।"

"अगर तुम हमारे साथ शहर में दाख़िल होतीं तो यह फ़लाँ रईस का बच्चा तुमको मिलता ।"

"क्या मतलब ?"

"इस बच्चे का बाप बार-बार तुमको पूछ रहा था, वह कह रहा था कि क़बीला हवाज़िन में बनू सअद की औरतें सबसे अच्छी होती हैं और उन सबसे ज़्यादा तुम्हारी तारीफ़ हो रही थी ।"

"क्या शहर में कोई बच्चा बाक़ी भी है ।"

"मैं कुछ नहीं कह सकती । अभी तो सब आ रही हैं । तुम जाओ ज़रूर !"

बेचारी ने शौहर को पड़ाव पर छोड़ा और ख़ुद शहर की तरफ़ चली । जिस औरत को शहर से आते हुए देखती उससे पूछती, "तुमने कौन-सा बच्चा पाया और क्या शहर में कोई बच्चा बाक़ी भी है ?"

औरत कहती, "जल्दी जाओ, हर एक तुमको पूछ रहा था । बच्चों की तरबियत में तुम्हारा बड़ा नाम है । मगर मुझे उम्मीद नहीं कि तुम कोई बच्चा पा सकोगी ।"

वह तेज़-तेज़ चलने लगी । वह हर औरत से वही सवाल करती और उसे वही जवाब मिलता ।

एक आख़िरी औरत जो शहर से निकली उसने बताया, "अब कोई बच्चा नहीं रहा, हाँ एक यतीम बच्चा है । उसका बाप मर चुका है । उसका दादा है तो अपने क़बीले का सरदार, मगर औलादवाला है । बच्चे की सिर्फ़ माँ है । वह हमारी ख़िदमत का बदला क्या दे सकेगी । हम सबने इस बच्चे को लेने से इनकार कर दिया । तुम चाहो तो उसे जाकर ले लो ।"

क़दम सुस्त पड़ गए । उसने इरादा किया कि वापस लौट जाए, मगर दिल ने कहा ख़ाली हाथ वापस जाना सही नहीं । चलकर बच्चे के घराने को तो देखना चाहिए । उसने बच्चे की माँ का पता पूछा और उस तरफ़ मुड़ गई । इधर से उधर होती हुई एक मकान के सामने खड़ी हुई ।

"आओ बहन क्या तुमको कोई बच्चा नहीं मिला ।" मकान की मालिकिन ने उसे देख लिया था उसने बाहर आकर कहा, "अगर तुम पसन्द करो तो मेरा बच्चा ले सकती हो ।"

वह अन्दर चली गई । उसने देखा बहुत-ही थोड़ा सामान घर में है । पूछा, "आपके ऊँट और आपकी भेड़ें कहाँ हैं ?"

"शायद तुमको मालूम नहीं, मेरा बच्चा यतीम है, वरसे में उसे एक ऊँट और चार भेड़ें और एक लौंड़ी मिली है । इसके अलावा हमारे पास कुछ नहीं ।"

"तो फिर इस उजड़े घर से क्या हासिल ?" लेकिन वह यह कहते-कहते रुक गई । मकान मालिकिन उसकी बात को समझ गई थी । उसने कहा—

"तुम बच्चे को देख तो लो । मेरा ख़याल है तुम उसे पसन्द करोगी, और देखो शरमाओ नहीं । मैंने तुम्हारी बात का असर नहीं लिया । तुम्हारा नाम क्या है ?"

"हलीमा !"

"ख़ुशी से ! यानी हलीमा सादिया ?"

"जी हाँ ! मेरा रिश्ता हवाज़िन के क़बीले बनू सअद से है ।"

"हमारे शहर मक्का के क़ुरैश क़बीले के सभी लोग यह चाहते थे कि वे अपना बच्चा तुम को दें—" "लेकिन हमारा ऊँट रास्ते में बीमार हो गया और मैं महरूम रह गई ।"

"तो क्या तुम ख़ाली हाथ ही जाओगी ?"

"मैं ख़ाली हाथ जाना नहीं चाहती ।"

"मेरे यहाँ तुम्हारे ख़ानदान की बहुत-सी औरतें आईं लेकिन उन्होंने मालदारों के बच्चों के मुक़ाबले में मेरे बच्चे को नहीं लिया, अगर तुम ख़ाली हाथ जाना नहीं चाहती हो तो मेरे बच्चे को देख लो ।"

"कहाँ है, आपका बच्चा ?"

"वह इस वक़्त सो रहा है । आओ मेरे साथ !"

बच्चा जाग चुका था और चाहता था कि कोई उसे उठा ले । वह एक नई औरत को देखकर मुस्करा दिया । बच्चा कुछ इस तरह मुस्कराया कि हलीमा सादिया का दिल उसकी तरफ़ खिचने लगा । छातियों में सरसराहट सी होने लगी । उसने बढ़कर उसे गोद में भर लिया और फ़ौरन दाहिना दूध मुँह में दे दिया । बच्चे की

माँ खिल उठी और उसने मुबारकबाद दी ।

यह सब चन्द मिनट में हो गया और हलीमा सादिया को मालूम भी न पड़ा । न जाने वह क्या बात थी कि वह एक यतीम बच्चे को लेकर इस तरह मुतमइन हो गई मानो तमाम दुनिया की दौलत उसे मिल गई ।

वह जिस वक़्त बच्चे को लेकर वापस हो रही थी, उस वक़्त उसने महसूस किया कि उसके थके हुए पाँव में ग़ैर मामूली ताक़त आ गई । पड़ाव पर उसका इन्तिज़ार हो रहा था कि वह आ जाए तो क़ाफ़िला वापस हो । उसके आने पर जब औरतों को मालूम हुआ कि वह इस यतीम बच्चे को ले आई, जिसको लेने से सबने इनकार कर दिया था, तो सबने एक ज़बान होकर कहा— "चलो ख़ाली हाथ से तो यह अच्छा ही रहा ।"

औरतों के इन शब्दों में एक तरह का मज़ाक़ तो था, मगर हलीमा सादिया ने इसको महसूस नहीं किया । उसने शौहर से कहा— "ज़रा इस बच्चे को देखो और आसमान की तरफ़ नज़र करो ।" शौहर ने बच्चे को देखा और ऊपर नज़र डाली । बादल का एक टुकड़ा दिखाई दिया जो हलीमा सादिया पर साया किए हुए था । वह हैरान रह गया । उसने कहा, "मेरा ख़याल है कि यह बच्चा हमारे लिए बहुत मुबारक साबित होगा ।"

"अच्छा तो ऊँट लाओ, अब वह कैसा है ?"

हारिस ने हलीमा से कहा, "वह तो अब बिलकुल अच्छा है, उसके कान गर्म हैं । गर्दन में तनाव बाक़ी नहीं रहा । वह अब ग़ैर मामूली गुदगुदी महसूस कर रहा है ।"

"तुमने दवा क्या दी ?"

"कुछ नहीं, मैं दवा क्या देता । मेरे पास कुछ था ही नहीं ।"

"तो आप से आप अच्छा हो गया ।"

"मैं समझता हूँ कि यह इस बच्चे के आने की बरकत है ।"

"बेशक"

ये दोनों बातें कर ही रहे थे कि क़ाफ़िला चल पड़ा । हलीमा सादिया बच्चे को लेकर ऊँट पर बैठी ।

शौहर ने नकेल थामी, ऊँट ने गर्दन ऊँची की । फिर सीधी करके बढ़ा तो सबसे आगे पहुँच गया । अब वह क़ाफ़िले से आगे-आगे चल रहा था ।

"ऐ हारिस ! यह ऊँट तो बीमार था, इतनी जल्दी तन्दुरुस्त कैसे हो गया ?"

लोगों ने पूछा ।

"यह मुझे भी नहीं मालूम ।"

"यह तो किसी ऊँट को अपने से आगे बढ़ने नहीं देता ।"

"मुझे भी हैरत है ।"

"कोई ख़ास बात ज़रूर है ।"

ख़ास बात तुम यह नहीं देखते कि हलीमा का ऊँट जितना ही तेज़ चलता है उसके ऊपर बादल का टुकड़ा उसी रफ़्तार के साथ बढ़ रहा है ।'

"ताज्जुब है ! यह क्या कोई चमत्कार है ?"

"मैं कुछ नहीं जानता, हलीमा से पूछो ।"

क़ाफ़िले के सरदार ने हलीमा से पूछा, हलीमा ने बताया, "अगर मैं इस बच्चे को फ़ौरन उठा न लेती तो मेरी छातियाँ दूध की ज़्यादती से फट जातीं ।"

और यह कहते-कहते यह नग़मा ज़बान से फूट निकला— "सब हैरान हैं औ हँसी उड़ाती हैं । हालाँकि उन्हें मालूम है कि बादल ने हम पर साया कर लिय है ।"

"क्या यह साया रहमत का साया नहीं है ?"

"ऐ लोगो ! मत घबराओ, अरब की रेत जल्दी-ही ठंडी हो जाएगी और आसमान सूरज की तेज़ी के बदले, रहमत बरसानेवाला है । हवाज़िनवालो ! तुम को मुबारक हो । ख़ुशनसीबी हमारे साथ है । बरकत हमारे साथ है । रहमत हमारे साथ है बड़ाई हमारे साथ है, और मुहब्बत ?.... यह सिर्फ़ मेरा हिस्सा है ।"

नग़मे का आख़िरी शब्द कहकर बच्चे को गले से लगा लिया । क़ाफ़िला बड़ी रफ़्तार से हवाज़िन की तरफ़ जा रहा था । तमाम औरतें ख़ुश-ख़ुश, तरह-तरह के गीत गा रही थीं, लेकिन मिलनी थी जिसको सारे जहाँ की दौलत, वह मिल गई ।

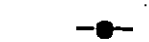

6

इन्तिक़ाम

ज़रीना कौन थी, कहाँ की रहनेवाली थी, यह किसी को नहीं मालूम । उसे लोगों ने उस वक़्त जाना, जब वह अनवर क्लब की मेम्बर हो गई और पाबन्दी से क्लब के प्रोग्रामों में हिस्सा लेने लगी । अनवर क्लब एक मामूली सा क्लब था, लेकिन ज़रीना के मेम्बर बनते ही उसके अन्दर बहार आ गई । देखते-देखते उसके मेम्बरों में काफ़ी बढ़ोतरी होने लगी । पहले जब अनवर क्लब की माहाना मीटिंग होती तो उसके मेम्बर अकसर ग़ैर हाज़िर रहते, लेकिन अब जो मीटिंग हुई तो यही नहीं कि सारे मेम्बर हाज़िर थे, सब वक़्त से पहले आ गए थे, और हर एक की यही ख़्वाहिश थी कि वह ज़रीना से ज़्यादा से ज़्यादा अपनी पहचान करा सके ।

अपने को तहज़ीबयाफ़्ता और सोशल साबित करने में ज़रीना ने भी खुले दिल से काम लिया । वह भी सबसे खुलकर मिलती । मुस्कराकर हाथ मिलाती, ज़रा झुककर मिज़ाज पूछती तो मिलनेवाले को ऐसा महसूस होता कि उसका दिल ज़रीना के पास रह गया । फिर उसकी चौड़ी पेशानी, खड़ी नाक, भरे-भरे स्याह अबरू, बड़ी-बड़ी पलकें, सुर्ख़-सफ़ेद चेहरा और उसपर मेकअप, इन तमाम ख़ूबियों ने उसके अन्दर वह कशिश पैदा कर दी थी कि देखनेवाला उसे देखता ही रह जाता और जब वह उससे मुख़ातिब होती तो गर्व महसूस करता ।

अनवर क्लब में उसे सबसे ज़्यादा लगाव मिस्टर सेठ से था । वह क्लब जाती तो मिस्टर सेठ के पास बैठती । खेलों में उससे क़रीब-क़रीब रहती । प्रोग्रामों में उसकी साथी बनती । उसके और मिस्टर सेठ के ताल्लुक़ात में दिन ब दिन ज़्यादती देखकर दूसरे रश्क करते । मिस्टर सेठ एक फ़र्म के मालिक थे । उन्होंने ज़रीना को अपनी तरफ़ झुकते देखकर पानी की तरह अपनी दौलत ज़रीना की फ़रमाइश पर बहाई । थोड़े-ही दिनों में ताल्लुक़ात बहुत गहरे हो गए और एक दिन जब लोगों को मालूम हुआ कि मिस्टर सेठ ने ज़रीना के लिए कोठी बनवा दी तो यक़ीन हो गया कि अब वह उनकी हो गई । लेकिन एक दिन जब देखनेवालों ने क्लब में ज़रीना को अकेले आता देखा, उसके साथ मिस्टर सेठ को न पाया और उस दिन मिस्टर सेठ ग़ैर हाज़िर रहे तो ज़रीना से उनकी ख़ैरियत पूछी गई । ज़रीना ने साफ़-साफ़ बता दिया कि मिस्टर सेठ की मुहब्बत में ख़ुलूस न था । उनकी उम्र देखिए और मुझे । वह मुझसे शादी करना चाहते थे । मैंने इनकार कर दिया ।

मिस्टर सेठ के बाद अज़ीज़ साहब की क़िस्मत जागी । अब ज़रीना सबसे ज़्यादा

अज़ीज़ साहब की तरफ़ खिंचने लगी । अज़ीज़ साहब लखनऊ के नवाब ख़ानदान से थे, उस ज़माने में भी अच्छी ख़ासी जायदाद के मालिक थे । उन्होंने ने भी उसकी तमाम ख़्वाहिशें पूरी कीं और दिल खोलकर अपना सब कुछ क़ुरबान करने के लिए तैयार रहे । और जब ज़रीना उनसे बहुत क़रीब आने लगी तो एक बड़ी जायदाद इस उम्मीद पर उसके नाम लिख दी कि अब वह उनसे शादी कर ही लेगी । इसी उम्मीद पर उन्होंने अपनी बात उस वक़्त उसके सामने रखी जब वह उसके साथ एक नाव में बैठी गोमती नदी की सैर कर रही थी । अज़ीज़ साहब की बात सुनकर उसने कल का वादा कर दिया और फिर यह कल का वादा उस बेवफ़ा माशूक़ का वादा झूठा साबित हुआ जिसका रोना तमाम शायर रोते चले आ रहे हैं ।

क्लब के मेम्बरों ने वजह पूछी तो ज़रीना ने जवाब दिया कि मैं ऐसे आदमी से कैसे शादी कर सकती हूँ जो एक बड़े घराने का दामाद है और उसकी बीवी मौजूद है ।

अज़ीज़ साहब के बाद मिस्टर हबीब और हबीब के बाद खोसला, राज, कंवर और बहुत-से आसमान-ज़मीन बनकर ज़रीना के क़दमों के नीचे आए, लेकिन सबके अरमानों की दुनिया में वही दिन आया, जब लोगों ने सुना कि उनमें से भी किसी की मुराद पुरी न हुई, और जब लोगों को अलग-अलग यह मालूम हुआ कि ज़रीना की एक निगाहे तवज्जुह के बदले भारी-भारी क़ीमतें देनी पड़ीं तो आपस में यह बातें शुरू हो गईं कि ज़रीना का मक़सद अपने हुस्न व ख़ूबसूरती के ज़रिए बड़ी से बड़ी रक़म वसूल करना है, वरना वह किसी की होकर नहीं रह सकती और फिर सब उससे होशियार हो गए ।

इन सबके बाद एक नौजवान विद्यार्थी ज़रीना के प्रेम जाल में फँसा । उसका नाम शेर अहमद था, वह नैनीताल के ज़िले का रहनेवाला था और किसी ऐसे रईस का लड़का था जो किसी वक़्त कई गाँवों का जमींदार रह चुका था ।

ज़रीना से उसने अपना परिचय कराया तो वह समझ गई कि इस नौजवान से किसी माली फ़ायदे की ज़्यादा उम्मीद नहीं, इसी लिए उसने उससे बहुत जल्द ताल्लुक़ात ख़त्म कर दिए । एक दिन जब शेर अहमद ने अपनी नौजवानी की तमाम सरमस्तियों के साथ उसके क़दमों में अपना दिल रख दिया तो ज़रीना ने यह कहते हुए ठुकरा दिया कि मैं किसी पहाड़ी के साथ अपनी ज़िन्दगी नहीं निभा सकती ।

शेर अहमद नैनीताल से इस ग़रज़ से आया था कि यहाँ डिग्री ले । लेकिन यहाँ आकर दूसरी डिग्री लेने में पड़ गया और जब यह दूसरी डिग्री हासिल न कर सका तो उसे पहली डिग्री भी बरबाद होती नज़र आई । वह नाउम्मीद होकर अपने कमरे में पहुँचा । बन्द कमरे में उसने दो ख़त लिखे, एक ज़रीना के नाम

दूसरा अपने बाप को । ज़रीना को उसने लिखा कि वह मुहब्बत में नाकामी के बाद ज़िन्दा नहीं रह सकता । बाप को पूरी दास्तान शुरू से आख़िरत तक लिख दी । उसने बाप को ख़त लिखते हुए इस बात की माफ़ी चाही कि आपका बेटा यहाँ आकर वह कुछ न बन सका जो आप चाहते थे । इसीलिए अब वह आपको मुँह दिखाने के क़ाबिल नहीं ।

दोनों ख़त लिखकर उठा । दरवाज़ा खोला, बाहर निकला और जाकर ख़ुद लेटर बाक्स में डाल आया । वापस आकर फिर कमरे में गया और फिर पिस्तौल के एक धमाके से बोर्डिंग हाउस की फ़िज़ा में हंगामा पैदा हो गया । और फिर यह कि जब पुलिस आई तो शेर अहमद की मेज़ पर उसका लिखा हुआ एक पर्चा पाया गया । लिखा था, "मैं मुहब्बत में नाकाम होकर ख़ुदकुशी कर रहा हूँ ।"

ज़रीना को ऐसे जाँबाज़ आशिक़ से वास्ता न पड़ा था । इस हादसे को उसने भी सुना । उसने ज़रा झुरझुरी ली । कुछ रोंगटे भी खड़े हो गए । फिर अजीब व ग़रीब हैरत नाक बात यह हुई कि इसी महीने में उसने मिस्टर शुजाअत अली ख़ाँ से थोड़ी-सी पहचान के बाद शादी कर ली । मिस्टर शुजाअत अली ख़ाँ सुपरिन्टेंडेंट पुलिस थे । उम्र चालीस साल के क़रीब थी । उनकी बीवी का इन्तिक़ाल हो चुका था । औलाद कोई नहीं थी और उससे ज़्यादा हैरत की बात यह कि ज़रीना ने क्लब की मेम्बरी से इस्तीफ़ा दे दिया । वह एक फ़रमाँबरदार बीवी की तरह कप्तान साहब के साथ रहने लगी । साल के अन्दर ख़ुदा ने उसकी गोद भरी । एक बहुत ही ख़ूबसूरत बच्चा उसकी गोद में खेलने लगा । वह एक अच्छी माँ की तरह उसकी परवरिश करने लगी । यहाँ तक कि बच्चा दो साल का हो गया । इस दौरान वह कप्तान साहब से बेहद मुहब्बत करने लगी थी, बेग़रज़ मुहब्बत, ऐसी मुहब्बत जैसी एक बीवी को अपने शौहर से होती है । उसकी यह तबदीली हक़ीक़त में हैरान करनेवाली थी ।

इन्हीं दिनों में ख़बर आई कि ज़िला नैनीताल में दिलेर ख़ाँ डाकू ने सख़्त दहशत फैला रखी है । वहाँ की पुलिस भी मजबूर हो गई है । वह पुलिस के हाथ नहीं आता । अख़बारों ने इन ख़बरों को ख़ूब रंग दिया और उनसे जहाँ तक हो सका पुलिस को ख़ूब बदनाम किया । आख़िर पुलिस ने दिलेर ख़ाँ डाकू को पकड़ने का पक्का इरादा कर लिया । मिस्टर शुजाअत अली ख़ाँ अपने पिछले कारनामों की वजह से बड़ी शोहरत हासिल कर चुके थे । उनको हुक्म मिला कि वे अपने कारनामों में एक कारनामे का और इज़ाफ़ा करें ।

कप्तान शुजाअत अली ख़ाँ को यह हुक्म मिला तो ज़रीना ज़िद करने लगी कि वह भी साथ जाएगी, वह उनके बिना एक मिनट भी अकेली नहीं रह सकती । कप्तान साहब ने उसे बहुत समझाया, ख़तरों से बाख़बर किया, मगर वह न मानी । फिर जब कप्तान साहब लैस होकर चले तो वह भी शौहर के साथ थी और बच्चा

भी । कप्तान साहब ने अपने इस सफ़र की किसी को ख़बर न दी । उन्होंने ज़िला नैनीताल के एक मशहूर थाने को अपनी सरगर्मियों का मरकज़ बनाने के लिए सोचा था । वह लखनऊ से आम मुसाफ़िरों के लिबास में ट्रेन में सवार हुए । रामपुर आकर कोतवाली गए, कोतवाल से मिले । अपना परिचय कराया और मक़सद बताया । स्टाफ़ के लोगों को बताया गया कि कोतवाल साहब के एक पुराने दोस्त फ़ैमिली के साथ मिलने आए हैं तो उन्होंने ख़ातिर में ख़ूब हिस्सा लिया । इसके बाद एक जीप पर इस अन्दाज़ से चले कि नैनीताल सूरज ढलने से पहले पहुँच जाएँ ।

नैनीताल रोड पर जीप फ़र्राटे भरती चली जा रही थी । सुपरिन्टेंडेन्ट पुलिस मिस्टर शुजाअत अली ख़ाँ ने अपने काम को करने का जो नक़्शा दिमाग़ में बनाया था वह उन्हीं ख़यालात को ठीक करने में लग गए । बीवी को समझा दिया था कि अब वह रास्ते में बात न करे ।

आधे से ज़्यादा फासला तै हो चुका था कि एक जगह जीप झटका खाकर रुक गई, जीप ड्राईवर कांस्टेबल था । उसने उतरकर देखा । उसने कहा, "साहब आप बैठे रहें, जीप में कुछ ख़राबी आ गई है, अभी ठीक करता हूँ । माफ़ फ़रमाएँ कोतवाल साहब से कुछ न कहिएगा ।"

उसने कुछ पुर्ज़े खोले और फ़िट किए । लेकिन उसको धीरे-धीरे एक घंटा लग गया और फिर भी गाड़ी को चलने के लायक़ न बना सका । इतनी देर में कप्तान ने कई बार उससे पूछा कि क्या कसर रह गई तो उसने हर बार यही जवाब दिया कि बस ठीक हो रही है ।

मगर जीप को न ठीक होना था और न हो सकी तो कांस्टेबल ड्राईवर ने अपने अफ़सर मेहमान से कहा, "अगर आप कहें तो किसी आने-जानेवाली कार को रोकूँ और उससे आपको रवाना कर दूँ । गाड़ी न जाने कब ठीक हो और आपको दिन ही दिन में पहुँचना है ।"

कप्तान साहब ने इसका कोई जवाब नहीं दिया । कुछ देर बाद पीछे से एक कार आती दिखाई दी । कांस्टेबल ड्राइवर ने हाथ के इशारे से रोका । कार रुकी । इस पर ड्राइवर के अलावा एक शरीफ़ सूरत बुज़ुर्ग बैठे थे । बड़ी-सी दाढ़ी-मूँछ, उम्र पचास साल से ज़्यादा । उन्होंने कार से सर निकालकर शरीफ़ इनसान, एक औरत और बच्चे को देखा फिर कुछ सोचकर उतरे । कांस्टेबल ने उनसे कहा, "यह साहब कोतवाल साहब के दोस्त हैं । नैनीताल की सैर को जा रहे हैं । हमारी जीप ख़राब हो गई है । आप अपनी कार पर आगे बैठ जाएँ और पिछली सीट इनके लिए ख़ाली कर दें, आपकी बड़ी मेहरबानी होगी । आप अपना परिचय कराएँ ताकि मैं आपकी मेहरबानी का ज़िक्र कोतवाल साहब से भी करूँ ।

वह बूढ़ा आदमी कुछ न बोला । एक नज़र उनपर डाली और ख़ामोशी से अगली ीट पर जा बैठा । अगली सीट पर बैठे हुए कह रहा था कि यह तो हमारा फ़र्ज़ कि शरीफ़ आदमी के काम आएँ । ख़ास तौर पर उस वक़्त जबकि एक शरीफ़ ौरत और बच्चा भी उसके साथ हो ।

इन शब्दों में कुछ ऐसा ख़ुलूस था कि कप्तान शुजाअत अली ख़ाँ साहब इस शकश को रद्द न कर सके । या फिर यह कि इस वक़्त वह मजबूर थे । बीवी, च्चे और अपने सामान को लेकर कार में जा बैठे । पिछली सीट उन लोगों के ाए काफ़ी थी ।

कार आगे चल दी । सब अपनी-अपनी जगह ख़ामोश थे । कप्तान साहब र सोचने लगे । उस आदमी के मिज़ाज से वाक़िफ़ हुए बिना बात करना मुनासिब समझा । ड्राइवर की नज़र सामने थी । वह कभी-कभी दाएँ-बाएँ और पीछे वटती नज़र डालता जाता था और बस कार आगे बढ़ रही थी ।

एक घंटे से ज़्यादा देर हो चुकी थी । रास्ते हीं में मग़रिब का वक़्त हो गया । छ सोचकर कप्तान साहब ने ड्राइवर से पूछा, "कितनी देर और लगेगी ?"

"बस आ गए, आप कहाँ तशरीफ़ ले जाएँगे ?"

ड्राइवर के इस सवाल का जवाब देना कप्तान साहब को बड़ा मुश्किल मालूम आ । वह अपने को ज़ाहिर करना नहीं चाहते थे, कुछ सोचकर बोले, "किसी टल में ले चलो ।"

"आप अजनबी मुसाफ़िर मालूम होते हैं । अगर कोई तकलीफ़ न हो तो ग़रीबख़ाना ाज़िर है ।" उन बुज़ुर्ग ने पेशकश की । कप्तान साहब ने उनकी पेशकश पर क्रिया तो अदा किया लेकिन क़बूल नहीं की ।

"बहुत बेहतर !"

ड्राइवर ने एक मोड़ से कार दूसरी तरफ़ घुमा दी । कुछ-कुछ अँधेरा हो चुका । इसी अँधेरे में कार शरीफ़ होटल के सामने रुकी । कप्तान साहब का सामान ारा गया, और फिर सलाम और थोड़ी बातचीत के बाद ड्राइवर कार और अपने लिक को लेकर एक तरफ़ चला गया । शरीफ़ होटल में कप्तान साहब एक कमरे ठहरे । वहीं खाना खाया, फिर होटल के मालिक से टेलीफ़ोन तलब किया । ने कमरे की तरफ़ इशारा कर दिया । कप्तान साहब टेलीफ़ोन के कमरे में पहुँचे । नी नोटबुक निकाली । नैनीताल के पुलिस स्टेशन के नम्बर देखे, नम्बर मिलाकर लो, हैलो" करने लगे । दूसरी तरफ़ से जवाब न पाकर रुके । एक सिगरेट ाकर पीने लगे । उसके बाद फिर फ़ोन मिलाने की कोशिश की । इस बार जवाब न पाकर समझ गए कि इसमें कुछ ख़राबी है । वह उठे और चाहा

कि कमरे से बाहर जाएँ, मगर दरवाज़ा बाहर से बन्द पाकर खटके । उस वक़्त उन्हें महसूस हुआ कि कमरे में एक तरह की ख़ुशबू फैली है और उनके हाथ पैर ढीले पड़ रहे हैं । वह आकर फिर कुर्सी पर बैठ गए और बेहोश हो गए ।

यहाँ ज़रीना बच्चे के साथ उनका इन्तिज़ार कर रही थी । देर हुई तो उठी । चाहा कि कमरे से बाहर निकलकर देखे, कहाँ चले गए । लेकिन उसी वक़्त उस कमरे की पीछे की दीवार का दरवाज़ा खुला । आहट पाकर वह मुड़ी, उसने देखा वही आदमी, जिनकी कार पर वह आई थी, उस दरवाज़े से कमरे में आ रहा था ।

"आप ! आप यहाँ कैसे.....?" ज़रीना ने हैरत के साथ कहा ।

"मैं यहाँ कैसे आया अभी बताता हूँ ।" कहते हुए वह आदमी एक कुर्सी पर बैठ गया । आप भी तशरीफ़ रखें और कमरे से बाहर जाने की तकलीफ़ न फ़रमाँएँ ।"

"क्यों ?"

"आप बाहर न जा सकेंगी, दरवाज़े बाहर से बन्द हैं ।"

"मगर इजाज़त के बिना मेरे कमरे में आप का आना सही नहीं है ।"

"जानता हूँ ।"

"जान-बूझकर आपने ग़लती की, इस तरह तो जुर्म और भी ज़्यादा सख़्त हो जाता है ।"

"यह भी जानता हूँ ।"

"आप मेरे कमरे से निकल जाइए ।"

"आप औरत ज़ात हैं, ज़रा नर्मी से बात कीजिए ।"

"आप जानते हैं कि मैं किसकी बीवी हूँ ।"

"मैं जानता हूँ, आप कप्तान शुजाअत अली ख़ाँ बहादुर की बीवी हैं । मैं यह भी जानता हूँ कि आप कौन हैं, मैं ज़रीना साहिबा से मुख़ातिब हूँ ।"

यह सुनकर ज़रीना हैरान रह गई । उसकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था कि यह साहब उससे किस तरह वाक़िफ़ हुए ।

"और आप कौन हैं ?" उसने घबराकर पूछा ।

"मैं आपको ज़्यादा हैरान रखना पसन्द नहीं करता । पहले आप यह फ़रमा दें कि लखनऊ का नौजवान विद्यार्थी शेर ख़ाँ आप को याद है ।"

"शेर ख़ाँ ! शेर ख़ाँ !" वह बौखला गई ।

"मैं शेर ख़ाँ का बाप हूँ । वह मेरा इकलौता बेटा था ।"

ज़रीना सब कुछ समझ गई । वह समझ गई कि उसे धोखा दिया गया है । उसकी समझ में यह भी आ गया कि उसे धोखा क्यों दिया गया । उसने दिल में सोचा कि इन्तिक़ाम के अलावा और क्या वजह हो सकती है । वह जान देने के लिए अपने को तैयार करने लगी, उसने कहा— "आपका शेर ख़ाँ एक बेवक़ूफ़ लड़का था । उसने मुहब्बत का मतलब नहीं जानता था । वह हवस को मुहब्बत समझा और बुरी तरह नाकाम होने पर ख़ुदकुशी कर बैठा ।"

"आपने शब्द उलट दिए । यूँ कहिए कि वह मुहब्बत को हवस समझा । उसने मुहब्बत का तोहफ़ा हवस के सामने पेश किया । वह हवस को कोठी न दे सका, बंगला न दे सका, जायदाद न दे सका । उसके पास सिर्फ़ जान थी । उसने जान दे दी, लेकिन वह तो मेरी जान था, उसमें मेरी जान थी । आप मेरी जान मुझे वापस दें, तब ही यहाँ से जा सकती हैं ।"

ज़रीना ने देखा कि उस बूढ़े की आँखों में मोतियों जैसी चमक पैदा हुई । वह समझ गई कि यह मोती नहीं, आँसुओं के क़तरे हैं । उसने कहा "शेर ख़ाँ की जान तो अब वापस नहीं आ सकती, आप उसके बदले मेरी जान ले सकते हैं ।"

"शर्त यह है कि आपके अन्दर आपकी जान हो ?"

"क्या मतलब ?"

"अभी बताता हूँ !"

यह कहकर बूढ़े ने ताली बजाई । फ़ौरन कमरे का बाहरी दरवाज़ा खुला । दो आदमी लोहे की सलाख़ें लिए हुए अन्दर आए । सलाख़ों की नोकें सुर्ख़ हो रही थीं, जैसे आग के अन्दर से निकाली गई हों ।

"खड़ी हो जाओ," बूढ़े ने हुक्म दिया । ज़रीना खड़ी हो गई ।

"इस बच्चे को मुझे दो ।"

"तुम बच्चे का क्या करोगे ?"

"ख़ूब, लहजा बदल गया, मैं इन सुर्ख़ सलाख़ों से बच्चे की दोनों आँखें फुड़वा दूँगा ।"

"आप ऐसा नहीं कर सकते ।"

"इस पहाड़ी इलाक़े में आपके शौहर का हुक्म नहीं चलता, दिलेर ख़ाँ का हुक्म चलता है । आपको मालूम नहीं यहाँ के थाने हैं तो सरकारी, लेकिन करते वही हैं जो मैं कहता हूँ, यहाँ के कांस्टेबल मेरे हुक्म पर चलते हैं । वह कांस्टेबल भी मेरा हुक्म माननेवाला था जिसकी जीप पर आप तशरीफ़ ला रही थीं ।"

"तो आप दिलेर ख़ाँ 'डाकू' हैं ।"

नहीं मैं शेर ख़ाँ का बाप हूँ । तीन साल हुए जब मेरे बेटे ने मुझे आख़िरी ख़त लिखा था । उस वक़्त से मैं इस ताक में था । दिलेर ख़ाँ से दिलेर ख़ाँ डाकू बन गया । फ़र्ज़ी डाके डलवाए, किसी की जान नहीं ली । अख़बारों में ख़ूब शोहरत कराई । फिर मैंने जो सोचा था वही हुआ । शुजाअत अली ख़ाँ मेरे मुक़ाबले को भेजे गए हैं जो टेलीफ़ोन के कमरे में मीठी नींद सो रहे हैं ।"

"मीठी नींद, क्या तुमने उन्हें..... ?"

"नहीं वे सिर्फ़ बेहोश हैं, तुम घबरा क्यों गई ।"

"वह मेरे प्यारे शौहर हैं ।"

"तो क्या ज़रीना के जिस्म में कोई बीवी भी मौजूद है ।"

"क्यों नहीं ।"

"अच्छा तो यही सही ।"

बूढ़े ने अपने दोनों आदमियों से कहा, "जाओ पहले कप्तान साहब की आँखें फोड़ दो ।"

"नहीं तुम ऐसा मत करो, जान का बदला जान मुझ से लो ।"

"अरी झूठी, तेरी जान तो तेरे शौहर और तेरे बेटे में है । मुझे वही चाहिए, मगर पहले मैं इसका सुबूत ले लूँ ।"

बूढ़े ने अपने साथियों से कहा, "फोड़ दो इसकी आँखें ।"

यह सुनकर ज़रीना ने अपने बेटे को एक तरफ़ कर दिया । दो साल का बच्चा हैरान व परेशान यह ड्रामा देख रहा था । ज़रीना तनकर खड़ी हो गई । उसने आँखें खोल दीं— "लो इन आँखों की क़ुरबानी ?"

आग की दो सलाख़ों की तरह अंगारा नोकें उस की आँखों से क़रीब होने लगीं । क़रीब-क़रीब यहाँ तक कि सलाख़ों की नोकों और ज़रीना की आँखों के बीच एक बालिश्त का फ़ासला रह गया । दिलेर ख़ाँ ने देखा कि ज़रीना ने पलक नहीं झपकाई ।

"ठहरो !" दिलेर ख़ाँ ने हुक्म दिया । वे सलाख़ें रुक गईं ।

"बेशक, तेरी जान तेरे अन्दर नहीं है ।" बूढ़े दिलेर ने कहा । फिर उसने लड़के को पकड़कर कहा—

"दोनों सलाख़ें इसके सीने के पार कर दो ।"

"नहीं, ख़ुदा के लिए नहीं ! तुम मेरे बच्चे को नहीं मार सकते ।" ज़रीना

बदहवास होकर बच्चे के आगे खड़ी हो गई ।

"मैं इसके बग़ैर ज़िन्दा नहीं रह सकती ।"

"क्यों नहीं ज़िन्दा रह सकती ।"

"यह मेरा बच्चा है ।"

"और शेर ख़ाँ भी तो मेरा बच्चा था ।"

"तो क्या तुम मेरे बच्चे की जान लेकर शेर ख़ाँ को ज़िन्दा कर सकते हो ?"

"मुझे बराबर का इन्तिक़ाम लेना है ।"

"इस बदले से तुम्हारे दिल से बेटे का ग़म दूर हो जाएगा ?"

"ग़म ! आह उसका ग़म तो क़ब्र तक साथ न छोड़ेगा ।"

"फिर भी तुम दूसरों को भी अपने जैसा ही बना देना चाहते हो ।"

"हें ! ये बातें !" बूढ़ा ज़रा देर के लिए रुका, उसने माथे का पसीना पोछा । फिर ज़रीना की निगाहों में निगाहें डालकर घूरने लगा । फिर आप ही आप बोला—

"इसकी निगाहें तो कहती हैं कि यह अब वह ज़रीना नहीं है जिससे मैं बदला लेना चाहता था । अब तो इसके जिस्म में एक बीवी मौजूद है और माँ भी । जब तक यह औरत बीवी है, माँ है, इसे ज़िन्दा रहना चाहिए । जाओ तुम सब आज़ाद हो ।"

शेर ख़ाँ के वालिद दिलेर ख़ाँ साहब जिस दरवाज़े से आए थे उसी से फिर चले गए । दूसरे दिन सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस कार पर बैठे नैनीताल वापस हो रहे थे । उनके साथ उनकी बीवी ज़रीना और उनका बेटा था । वह अपने कारनामों की वजह से बड़ी शोहरत हासिल कर चुके थे ।

ज़िला नैनीताल में अमन होने की वजह से उनके कारनामों में एक कारनामा और बढ़ गया । लेकिन यह किसी की समझ में न आया कि एक दिन में यह क्या से क्या हो गया और कैसे हो गया । हाँ, यह ज़रूर था कि ज़रीना हर साल अपने बच्चे को लेकर गर्मियों में नैनीताल जाती और दिलेर ख़ाँ की मेहमान बनती थी और जब वहाँ से वापस आती तो उसके साथ उसके बच्चे के लिए ढेरों तोहफ़े होते ।

—●—

7

नर्गी

यह सुनकर मुझे बड़ी ख़ुशी हुई कि शकीब साहब सेहतयाब होकर आ गए। शकीब साहब मेरे उस्ताद थे। हमारे कॉलेज में सारे उस्तादों से ज़्यादा मेहनती, संजीदा और बावक़ार उस्ताद वही थे। आजकल विद्यार्थी किसी को ख़ातिर में नहीं लाते, लेकिन शकीब साहब की इज़्ज़त सभी करते थे।

और यह सुनकर मेरी ख़ुशी की कोई हद न रही कि अस्पताल से शकीब साहब सेहत के साथ एक बीवी भी लाए हैं। "यक़ीनन वह कोई बहुत-ही ख़ूबसूरत डॉक्टरनी होगी।" अचानक मेरे दिल ने कहा और मैं फ़ौरन अपने टीचर से मिलने चल दिया। रास्ते में शकीब साहब के मुनासिब जिस्म और गोरे रंग को नज़र में रखते हुए डॉक्टरनी की ज़ेहन में तस्वीर बनाता रहा।

शकीब साहब जैसे ख़ूबसूरत और बावक़ार संजीदा आदमी की पसन्द ज़रूर ग़ैर मामूली होगी। इसमें शक नहीं कि वह क़द में शकीब साहब से दो तीन इन्च कम ही होगी। यही अन्दाज़ से पाँच फ़ीट एक या दो इंच। लेकिन हुस्न की दूसरी ख़ूबियों में अगर वह उन्हीं जैसी हुई तो भी निसवानी नज़ाकतों और लताफ़तों ने उसे इन्द्रलोक की अप्सरा या कोहक़ाफ़ की परी ज़रूर बना दिया होगा। वरना काहे को शकीब साहब उसे जीवन साथी बनाते। रंग और रूप का अन्दाज़ा करने में मुझे परेशानी तो हुई क्योंकि शकीब साहब ख़ुद रंग और रूप में अपनी मिसाल आप थे। ओह... मैं समझ गया। बेऐब ख़ुदा की ज़ात है। शकीब साहब की बाँछे ज़रा खुली हुई हैं और डॉक्टरनी गुँचा दहन होगी। और अगर उसके गोरे चिट्टे रंग में उसके ख़ून ने गुलाबी भर दी होगी तो हक़ीक़त में वह ग़ैर मामूली हसीन होगी। फिर अगर कलाँ रास घोड़े की तरह गर्दन, कश्मीरी हसीना की तरह खड़ी नाक और क़ाफ़ की परियों की तरह किताबी चेहरा होगा तो ?—तो कहना चाहिए कि ख़ुदा ने उसे अपने हाथ से बनाया होगा। और उम्र ?— हाँ, उम्र तो ज़्यादा ही होगी। मगर शकीब साहब ऐसे नादान नहीं कि ख़ुद जवान होते हुए गिरती दीवार का सहारा लेंगे। और आँखें ? वे तो नरगिसी होंगी ही। क्योंकि शकीब साहब के बारे में यह मशहूर था कि वे यूरोपियन औरतों को केवल नीली आँखों की वजह से हसीन नहीं कहते थे। निगाहों में बहुत ज़्यादा कशिश और बिजली की सी चमक होगी। शकीब साहब की निगाहों में चमक क्या कम है। ख़ुदा झूठ न बुलाए। जिस वक़्त दोनों की निगाहें टकराई होंगी तो दो दिलों को

मिलाने वाले कातिबे तक़दीर ने यह शेर ज़रूर नोट किया होगा—

तूफ़ान बिजलियों का उठा जलवागाह से,
किसकी निगाह लड़ गई किसकी निगाह से ।

और मैं एक आदमी से टकराकर अगर दीवार का सहारा न ले लेता तो नाली में लतपत होने में शक ही न था । माफ़ कीजिएगा, कहकर और जिस आदमी से टकराया था उसकी ख़ुशमगीं निगाहों को देख मैं जल्दी से आगे बढ़ गया । घबराहट में वह नक़्शा मेरे ज़ेहन से ग़ायब हो चुका था जो मैं तमाम दुनिया से बे ख़बर अपने दिमाग़ में बनाता चला आ रहा था । ला हौ-ल वला क़ुव्वत । अगर इस वक़्त किसी ट्रक के नीचे आ जाता तो भुरकस ही निकल गया होता । मैं मुस्कराया । शकीब साहब का दौलतकदा क़रीब आ गया था । मैंने दिल ही दिल में अपने को ज़रा बावक़ार — नहीं बावक़ार नहीं, संजीदा— संजीदा भी नहीं— वह जो कहते हैं न ! कि फ़लाँ आदमी अपने को 'लिए-दिए' रहता है । मैंने अपने चेहरे को ऐसा ही बना लिया । फिर सोचा लोग ग़ैर मामूली हसीन व जमील को देखकर बेहोश हो जाते हैं । कहीं ऐसा न हो, सूरज और चाँद को एक जगह देखकर मैं गुमसुम हो जाऊँ और दोनों की नज़रों में हक़ीर ठहरूँ तो फिर मैंने कोशिश करके अपने को पूरी तरह 'लिए-दिए' बना लिया । दरवाज़े पर जाकर खड़ा हुआ । काल बेल की तरफ़ हाथ बढ़ा दिया तो मेरा हाथ काँपने लगा । मैं रुक गया, और फिर जब मुझे यक़ीन हो गया कि मैं हक़ीक़त में 'लिए-दिए' बन गया हूँ तो बटन दबा दिया । मेरा ख़याल था कि घंटी टन-टन-टन यानी ज़ोर से बजेगी लेकिन आवाज़ कुछ ऐसी पैदा हुई जैसे अन्दर कोई राग गूँज गया हो, मैं अपने को संभालकर इन्तिज़ार करने लगा । एक मिनट नहीं हुआ था कि धीरे से किवाड़ का एक पट खुला । मेरे सामने एक साँवली पूरी जवान औरत, यही कोई चौबीस साल के क़रीब बहुत-ही सादा लेकिन बहुत-ही साफ़ सुथरा लिबास पहने खड़ी थी । उसने एक नज़र मुझे देखा :

"शायद आप विद्यार्थी हैं ?"

"जी हाँ ! क्या मास्टर साहब तशरीफ़ रखते हैं ?"

"अभी-अभी बाज़ार गए हैं । अभी आते हैं । मैं कमरा खोलती हूँ, ज़रा आपको ज़हमत होगी ।"

और वह कमरा खोलने चली गई । "माशा अल्लाह ! किस क़द्र मुहज़्ज़ब और समझदार ख़ादिमा है । मुझे देखते ही पहचान लिया कि विद्यार्थी हूँ । फिर ज़बान किस क़द्र प्यारी । जब ख़ादिमा ऐसी है तो मालिकिन कैसी होगी । मैंने

दिल में दुआ की, "अल्लाह ! आज मेरी तहज़ीब और ज़बान की लाज रख ले ।"

"तशरीफ़ लाएँ ।"

कमरे के किवाड़ खुल चुके थे ।

ख़ादिमा ने दरवाज़े से बाहर निकलकर कहा और मैं उधर जाकर कमरे में दाख़िल हो गया । बारह फ़ीट चौड़े कमरे में सोफ़ा सेट, उसके सामने डेढ़ फ़ीट ऊँची हलकी सी मेज़, मेज़ पर सफ़ेद मोटा-सा मेज़पोश जिसके कोनों पर सिर्फ़ गुलाब का एक-एक फूल कढ़ा था और सोफ़ा सेट के ठीक सामने दीवार पर हलके-हलके रंगोंवाला एक कैलेंडर टंगा था । बस यही सादगी कमरे की तमाम ज़ीनत थी । ख़ादिमा ने कहा कि तशरीफ़ रखें । मैं बैठ गया ।

"मेरा सलाम कह दीजिएगा ।"

"अर्ज़ किया न ! अभी तशरीफ़ लाते हैं ।"

"नहीं मेरा मतलब है, अन्दर....." और मैं कहते-कहते रुक गया ।

"अन्दर किसे ?" उसने पूछना चाहा ।

"यानी हमारे मास्टर साहब की....." और मैंने फिर ज़बान रोक ली । वह मुस्कराई ।

"अच्छा, मैं समझ गई ।"

बाहर किसी ने फिर कालबेल दबाई और फिर राग गूँजा ।

"लीजिए आपके मास्टर साहब आ गए । आपका नाम ?"

"जव्वाद !"

अच्छा नाम है, कहकर वह दरवाज़े की तरफ़ चली गई और मैं हसीन व जमील, बावक़ार, संजीदा और नए शादीशुदा उस्ताद से मिलने और उनसे बात-चीत करने के लिए अपने को तैयार करने लगा । अल्लाह का शुक्र है कि अभी तक मैं 'लिए-दिए' था ।

मास्टर साहब को कुछ भी देर न लगी, वे सहन में आकर सीधे कमरे में आ गए । मैं आहट पाते ही खड़ा हो गया । सलाम किया और मुसाफ़े के लिए हाथ बढ़ा दिया । शकीब साहब ने बड़े तपाक से हाथ मिलाया । पास बिठाया । बड़े खुले दिल से बातें करने लगे । ख़ैरियत और थोड़ी बात-चीत के बाद मैंने शादी की मुबारकबाद पेश की । मास्टर साहब बहुत ख़ुश हुए ।

"तुम अपनी उस्तानी से मिले भी ! उन्होंने मुझसे पूछा । मैंने अर्ज़ किया कि

ख़ादिमा से सलाम तो कहलवा दिया था ।

"ख़ादिमा !.....ख़ादिमा कौन ?"

"यही, यह जो कहा....." और मैं कुछ न समझकर अधूरी बात कह कर चुप हो गया ।

"यही तो हैं— अच्छा परिचय करा दूँ ।" फिर मास्टर साहब कमरे के उस दरवाज़े की तरफ़ गए जो सहन में खुलता है । "अरे भई नग्गी ! चाय लाना !" और यह कहकर फिर मेरे पास आ बैठे, और मेरा यह हाल कि गोया मैं कमरे में था ही नहीं ।

"ख़ुदाया ! क्या वही जिसे मैं ख़ादिमा समझा ।"

"यह लो जव्वाद सलाम करो" मास्टर साहब ने आहट पाकर मुझसे कहा ।

वही जिसे मैं ख़ादिमा समझे हुए था, ख़ूबसूरत ट्रे में चाय लाई । मुझ पर नज़र डालकर बोली—

"अच्छे हो जव्वाद !

"जी..... !" अब मैं सम्भला । मैंने सलाम किया । मास्टर साहब मुस्करा रहे थे ।

"बस एक ज़रा, एक मिनट !" और यह कहकर मेरे उस्ताद की यह जीवन साथी फिर अन्दर चली गईं और वहाँ से दो सेब, एक छोटी-सी ख़ूबसूरत छुरी ट्रे में रखकर लाईं । मास्टर साहब बाज़ार से दो ही सेब लाए थे, ऐसे बेदाग़ और एक ही रंग के सेब कि मेरी ज़बान से 'वाह' निकल गया । मेरी नज़रें अचानक इस नए जोड़े पर पड़ीं जिनमें से एक थे शकीब साहब और दूसरी थीं मोहतरमा नग्गी साहिबा ।

इसमें शक नहीं कि जब तक मैं वहाँ रहा, ज़बान बयान के ऐतबार से बेशक उनके मुँह से फूल झड़ते थे । बेशक बात करते वक़्त वे मोती बरसाती थीं उनकी निगाहों में बिजलियाँ कूट-कूटकर भरी थीं । बेशक, वे बहुत-ही मीठी और सुन्दर ज़बान बोलनेवाली ख़ातून थीं । लेकिन मैं मास्टर साहब की इस 'सांवलिया' पसन्द पर उन्हें ख़ुश नसीब नहीं कह सका ।

थोड़ी देर और बैठकर मैंने इजाज़त चाही । दोनों ने हँसमुख चेहरों के साथ रुख़्सत किया । फिर आने का वादा लिया । मैं न जाने क्या सोचता हुआ वापस हुआ । रास्ते में शौकत मिला । पूछने लगा, "कहाँ से आ रहे हो ।" मैं झल्लाया हुआ था ही, जवाब दिया, "भाड़ से" मसख़रे शौकत ने कहा, "इसी लिए भुने-भुने

से लगते हो ।" और फिर जब मैंने उसे बताया कि उस्ताद साहब और मोहतरमा उस्तानी जी से मिलकर आ रहा हूँ तो शौकत बोला, "उस्तानी जी ? यह कहो कि सरोजनी नायडू से मुलाक़ात का सौभाग्य नसीब हुआ है ।"

सरोजनी नायडू की मिसाल देने पर मैं फड़क उठा । जनाब नगीं साहिबा को देखने और सुनने के बाद हर आदमी को मानना पड़ेगा कि वह दरबारे निज़ाम की शायरा मिसेज़ सरोजनी नायडू ही थीं । और फिर मेरी समझ में आ गया कि शकीब साहब केवल तहज़ीब और ज़बान की शाइस्तगी की वजह से आज की सरोजनी नायडू को दिल दे बैठे, जिस पर 'काले नमक की पहाड़न' की फबती भी चस्पाँ हो सकती है ।

लेकिन जब मैं अपने अंग्रेज़ी के टीचर मिस्टर फ़िश से मिला तो राय बदलनी पड़ी । हक़ीक़त में नगीं साहिबा ने शकीब साहब के दिल पर अपनी ज़बान का नक़्श नहीं बिठाया था । शकीब साहब का दिल जीतने की वजह कुछ और थी । मिस्टर फ़िश ने मुझे बताया कि जब शकीब साहब अस्पताल में दाख़िल हुए तो मिस नगीं यानी मिसेज़ शकीब वहाँ नर्स थीं । उस वक़्त उन्होंने दिन रात एक करके शकीब साहब की ख़िदमत की । अगर वे अपना सिर्फ़ फ़र्ज़ अंजाम देतीं तो रात के छः घंटे पूरे करके वार्ड से चल देतीं और दूसरी नर्स बिमला के लिए ड्यूटी छोड़ देतीं । लेकिन नहीं, फ़र्ज़ से बढ़कर काम किया । वे आधी-आधी रात तक वार्ड में रहतीं, और जब तक यक़ीन न हो जाता कि शकीब साहब सुबह तक आराम से सोएँगे, नज़रें उनपर से न हटातीं ।

पूरे दो माह उन्होंने अपने को शकीब साहब पर निछावर रखा । डॉक्टरों, कम्पाउन्डरों और नर्सों को यक़ीन था कि शकीब साहब के मिलनेवालों ने या ख़ुद उन्होंने ज़रूर बड़ी-सी रक़म उनको पेशगी में दे दी है । बिमला ने कई बार पूछा भी, आज तुमको क्या मिला ? मुझे पाँच का नोट दिया है । इसके जवाब में कह देतीं कि मैं तो इकट्ठा लूँगी ।

"बेवक़ूफ़ कौन देता है ।" मिस नगीं पर तंज़ किया जाता, लेकिन हक़ीक़त में क्या कोई ऐसी ख़िदमत करेगा । कई मौक़े ऐसे आए जब बिमला ने शकीब साहब की तरफ़ से मुँह फेर लिया— ऐसे नाज़ुक वक़्त में जब भाई बहन के पास से हट जाता है और बहन भाई के पास से, ऐसे नाज़ुक वक़्त में जब माँ-बाप औलाद के पास से हट जाते हैं और औलाद माँ-बाप की ख़िदमत से महरूम हो जाती है— जी ! ऐसे नाज़ुक वक़्त में फ़ितरत के ख़िलाफ़ मिस नगीं ने शकीब साहब को सहारा दिया ।

दो महीने से ज़्यादा अपने फ़र्ज़ से बढ़कर तीमारदारी करने के बाद जब शकीब

साहब ठीक हुए तो मिस नग़ीं से बोले, "तुमने कभी कुछ नहीं माँगा । अब मेरी ख़्वाहिश है कि तुम अपनी ख़्वाहिश बयान करो, क्या चाहती हो ? तुमने जो मेरी ख़िदमत की है, उसका बदला मैं नहीं दे सकता । लेकिन चाहता हूँ कि तुम से ही पूछ लूँ कि तुम क्या चाहती हो ?"

मिस नग़ीं ने यह भी न देखा कि ख़ुद किस शक्ल व सूरत की हैं और शकीब साहब कैसे ख़ूबसूरत हैं, मगर जैसे पहले से तैयार और तय किए बैठी थीं । फ़ौरन कह दिया, "मैं आपको चाहती हूँ ।"

"बेहतर है", शकीब साहब की ज़बान से निकला, "संजीदगी के साथ अपना सामान लो, अस्पताल छोड़ो और मेरे साथ चलो ।"

इस थोड़ी-सी बात-चीत के बाद मिस नगीं को घर लाए । हम सबको बुला भेजा । मैं भी गया था । हिन्दू-मुस्लिम सभी टीचर गए थे । घर पर और भी बाइज़्ज़त लोग छोटे-बड़े सभी मौजूद थे । सबके सामने मिस नगीं को पहले कलमा पढ़वा कर इस्लाम में दाख़िल किया । इसके बाद सबने सुना की शकीब साहब कह रहे थे— "क़बूल किया मैंने ।"

लीजिए मिस नगीं मिसेज़ शकीब हो गईं । शकीब साहब का बयान है कि मेरी नज़र में नग़ीं से अच्छी कोई औरत नहीं ।

मिस्टर फ़िश से मालूमात हासिल करके अब मैं समझा कि पूरब-पश्चिम के सिरे मिलने का क्या राज़ है और एक मर्द औरत से क्या चाहता है । अगर यह राज़ छोटे दरजे की औरत भी जान ले तो बड़े से बड़े मर्द को ग़ुलाम बना सकती है । क्या ख़याल है आपका । मेरा ख़याल सही है या ग़लत ?

8

हौलनाक जुर्म

ठीक उसी वक़्त ड्योढ़ी में 'वह' खँखारे और सहन में आ गए । उन्होंने देखा सुशीला मेरे कमरे से निकली । उदास-उदास चेहरे के साथ । वह कुछ ऐसी उदास थी कि 'उन्हें' सलाम करना भी भूल गई । चाहती थी कि सिमट कर निकल जाए, लेकिन 'उन्होंने' ताड़ लिया । समझ गए कोई बात ज़रूर है कि आज पहली बार सुशीला इस घर से उदास-उदास चेहरा लेकर जा रही है । सलाम भी नहीं किया उन्हें । "क्या बात है ?" उन्होंने सुशीला से पूछा । वह जवाब दिए बिना झट से निकल जाना चाहती थी । "पगली ! तूने मुझे सलाम भी नहीं किया ?" उन्होंने उसे रोका । वह दीवार से लगकर सिमटी और चाहा कि भाग जाए ।

"क्या पिटेगी ?" उन्होंने उसे पकड़ लिया, "यह तेरी आँखों में आँसू कैसे ?"

"छोड़िए भय्या जी !" यह कहने के साथ आँसुओं के दो बड़े-बड़े मोती उसकी आँखों से निकलकर 'उनकी' आस्तीन पर आ गिरे और जज़्ब हो गए । वे आस्तीन को देखने लगे । समझ गए कोई बात तो है, जिसे यह छिपा रही है । "तू यहाँ से यह चेहरा लेकर नहीं जाएगी । मैं रमेश चाचा को क्या मुँह दिखाऊँगा ।"

वह चुप खड़ी की खड़ी रह गई । अब उसने अपना हाथ छुड़ाने की कोशिश नहीं की । हाँ आँसू उसकी आँखों से बहने लगे ।

"अच्छा, मैं समझा अपनी भाभी से लड़ी है शायद !" वह रोती रही । कुछ न बोली ।

"बताती क्यों नहीं !" उन्होंने डाँटा । प्यार की डाँट पड़ी तो वह बच्चों की तरह हुमक-हुमककर रोने लगी ।

"क्या मुसीबत है, कुछ बताती भी नहीं । अच्छा, आ ।" वह उसे खींचकर मेरे कमरे के दरवाज़े पर ले आए ।

"तुमने इसे कुछ कहा है ?" उन्होंने मेरी तरफ़ देखा । "मैंने तो कुछ भी नहीं कहा । मुझसे क़ुरआन शरीफ़ माँगने आई थी । मैंने नहीं दिया । बस नाराज़ हो गई । जैसी दुबली-पतली नाज़ुक है वैसे ही नाज़ुक मिज़ाज भी है ।"

"और तुमने मुझे गाली नहीं दी ?" सुशीला ने तेज़ होकर कहा ।

"सुन रहे हो ? मुझे हमेशा 'आप' कहती थी, आज 'तुम' कह रही है । कैसी

बदतमीज़ है, तुमने इसे सिर पर चढ़ा रखा है जो इसी का नतीजा है ।" क्या गाली दी इन्होंने । ये तो तुझे प्यार करती थीं !" उन्होंने उससे पूछा ।

"मुझे मुशरिक, काफ़िर, नजिस, नापाक और न जाने क्या-क्या कह डाला ।"

"सोचने की बात है—" मैं बीच में बोल उठी, "मैं क़ुरआन पाक इसे कैसे देती । हम मुसलमान बेवुज़ू होते हैं तो इसे नहीं छूते, इसे कैसे थमा देती । यह तो....."

"हाँ, हाँ ! फिर कह डालिए..... इस भोली और मासूम बच्ची को मुशरिक, काफ़िर, नापाक..... शर्म नहीं आती । यह गाली नहीं तो और क्या है । क्या कोई गुंडा माँ-बहन की गाली दे तो गाली होगी । आख़िर आपने उसे काफ़िर और मुशरिक क्यों कहा । मासूम बच्ची है इसे नापाक और नजिस क्यों कहा ?"

"हटो भी ! चले वहाँ से बहन की तरफ़दारी करने । क़ुरआन का अदब व एहतराम भी तो कोई चीज़ है ।" मैं झुंझला गई ।

"अच्छा बस कीजिए, मैं जानता हूँ क़ुरआन का अदब व एहतराम कितना करती हो, बस उसे चूम लो, चाट लो, आँखों से लगा लो, रोज़ एक या आधा पारा पढ़ लो, बस हो गया एहतराम, आ बेटी मैं तुझे अपना क़ुरआन दूँ । आसान पढ़नेवाला ।"

और यह कहकर वह उसे अपने कमरे में ले गए । अपना क़ुरआन उसे दे दिया । वह क़ुरआन पाकर ख़ुश हो गई । फिर जो उनके साथ मेरे कमरे की तरफ़ से बाहर आने लगी तो इस तरह मुझ पर नज़र डाली जैसे कोई सिपाही हो, जिसने बहुत बड़ी लड़ाई जीती हो, बाएँ हाथ का अंगूठा और दाहिने हाथ से क़ुरआन दिखाती चली गई । उसके जाने के बाद वे मेरे कमरे में आए । कपड़े भी नहीं बदले, जूते उतारकर चप्पल भी नहीं माँगी, चाय-पानी की फ़रमाइश भी नहीं की । एक कुर्सी पर बैठ गए । दो मिनट ख़ामोश बैठे रहे उसके बाद बोले—

"तुमने अपने लिए अच्छा नहीं किया ।"

"क्या ?" मैंने पूछा ।

"यही कि उसे झिड़क दिया । उसे ऐसे सख़्त शब्द कह डाले ।"

"तो क्या ग़लत कहा मैंने ?"

"बिलकुल ग़लत कहा ।"

"तो क्या क़ुरआन को नापाक आदमी छू सकता है ?"

"नहीं ।"

"तो फिर !"

"तो फिर सोच लीजिए, पहले तो सुशीला बच्ची है और न जाने किस शौक़ में क़ुरआन लेने आई । हो सकता है रमेश चाचा ने मँगवाया हो । फिर यह कि क़ुरआन जुज़दान के अन्दर है । मौलवी, आलिम और फ़िक़्ह जाननेवालों ने हमें बताया है कि जुज़दान में क़ुरआन हो तो हम 'हम' के मानी समझीं आप ? हम मुसलमान छू सकते हैं । यह अदब व एहतराम हमारे लिए है, जो क़ुरआन को कलामे इलाही मानते हैं । लेकिन वे बेचारे जो इसे 'कलामे इलाही' सुनते हैं मगर मानते नहीं तो वे क्यों वह एहतराम करें जो हम करते हैं ।"

"इसी लिए तो मैंने नहीं दिया था ।"

लेकिन अगर कोई ग़ैरमुस्लिम इसको पढ़ना चाहे तो ?"

"तो यह....तो यह कि .....मैं हकला गई, "वह उसे कैसे छू सकता है, वह तो है ही मुशरिक । क़ुरआन कहता है कि मुशरिक नजिस होता है ।"

"ख़ूब समझा आपने क़ुरआन । अच्छा यह बताइए मुल्लानी जी ! जब पहले-पहल क़ुरआन नाज़िल हुआ तो दुनिया में कितने मुसलमान थे ?"

"एक भी नहीं ।"

"तो क्या ख़याल है आपका । यह क़ुरआन केवल मुसलमानों का है । या उसके इजारादारा हैं । ग़ैर मुस्लिमों को इससे कोई मतलब नहीं होना चाहिए । अल्ला के बन्दे बस हम-तुम हैं, ये नहीं ?"

"तो वे मुसलमान हो जाएँ तो पढ़ें ।" यह मैंने कहने को कह दिया मगर मुझे ऐसा लगा जैसे मैंने बहुत हलकी बात कही हो ।

"अगर इस्लाम को समझने के लिए पढ़ना चाहें तो ?"

"तो.....तो यह कि ....अच्छा पहले आप यह जो कपड़ों में क़ैद हैं, इस नजात हासिल कर लें । फिर बात...."

"जी नहीं ! मेरे ख़याल से तुमने एक ग़रीब का दिल दुखाया । तुमको उस माफ़ी माँगनी होगी । सुशीला बहुत अच्छी बच्ची है । हमारे घर में कोई बच्च नहीं । वह किस तरह हमारे घर आकर कोयल की तरह कूकती है । हम सब कितनी मुहब्बत रखती है । रमेश चाचा भी हमसे मुहब्बत करते हैं । बिमला चाची हर दूसरे-तीसरे दिन आती हैं, कैसी अच्छी घरेलू बातें बताती हैं और समझाती हैं । उनके ये एहसान हैं । ख़ुदा करे सुशीला चाचा जी या चाची से कुछ न कहें अच्छा मैं ज़रा उनसे मिल आऊँ ।"

वे उठना चाहते थे, मैंने रोका, अच्छा ज़रा आराम तो कर लो । दफ़्तर में सिर मारकर आए हो, अब वहाँ जाकर दिमाग़ खपाओगे ।

"यह तो बताओ, बात तुम्हारी समझ में आ गई या नहीं ? मेरी परेशानी यह है कि अगर अल्लाह ने तुमसे यह पूछा कि क़ुरआन की तालीम फैलाने में तुम्हारा क्या रोल रहा तो कहीं ऐसा न हो कि क़ियामत के दिन कुछ जवाब न दे सको और उसकी सज़ा भुगतो.... !"

यह कहकर वे जूते की डोरी खोलने लगे । मैंने देखा तो आँसुओं के दो बड़े-बड़े क़तरे उनके जूतों पर गिरे ।

"ऊँहूँ ! तुमने भी ज़रा-सी बात का बतंगड़ बना लिया ।"

"यह ज़रा-सी बात नहीं है । मुझे तुमसे मुहब्बत है । मुझे डर है कि जब तुम्हारा और सुशीला का मामला अल्लाह के सामने पेश होगा तो अगर बहस शुरू हो गई तो तुम तबाह हो जाओगी ।"

उनकी आँखों में आँसू झलक आए । यह देखकर मैंने ख़ामोशी इख़्तियार कर ली । उठकर रसोई में चली गई और चाय बनाने लगी ।

वे गुम-सुम बैठे रहे और सोचते रहे । मैंने दो बिस्कुट लिए और चाय ले जाकर पेश की । बिस्कुटों की तरफ़ उन्होंने देखा भी नहीं । चाय का एक घूँट लिया और प्याली रख दी ।

"तो क्या होगा वहाँ ?" उनकी ज़बान से आपसे आप निकल गया ।

"कहाँ ?"

"क़ियामत में ।" उन्होंने जवाब दिया । आख़िरत की फ़िक्र उन्हें बेचैन किए हुए थी ।

"अच्छा मैं सुशीला को मना लूँगी ।" मैंने उनकी बेचैनी देखकर कहा ।

"माफ़ी नहीं माँगोगी ?"

"माफ़ी अल्लाह से माँग लूँगी ।"

"न, चलो चलें रमेश चाचा के घर ।"

"अब मैं खाना बनाऊँगी । अभी मैंने अस्र की नमाज़ भी नहीं पढ़ी है, कल किसी वक़्त चलूँगी ।"

उन्होंने बहुत कहा, लेकिन मैंने वक़्त की कमी का बहाना कर दिया । वे अफ़सोस करते हुए मस्जिद चले गए । मैंने अस्र की नमाज़ पढ़ी और रसोईघर में घुस गई ।

खाना पकाते वक़्त अचानक एक लकड़ी, ख़ुदा जाने वह किस पेड़ की थी चटख़-चटख़ कर जलने लगी और उसकी चिंगारियाँ इधर-उधर उड़ने लगीं । मैंने सोचा इसे चूल्हे से निकालकर फेंक दूँ । इसी इरादे से मैंने वह लकड़ी चूल्हे से निकाली तो वह फिर चटखी । कई चिंगारियाँ मुझपर आ गिरीं मैंने लकड़ी फेंक दी और उफ़-उफ़ करने लगी ।

"क्या हुआ ?" वे उसी वक़्त मस्जिद से आए थे ।

"चिंगारियाँ चेहरे पर आ गईं ।" मैंने बताया ।

"अल्लाह तआला तुमको जहन्नम की चिंगारियों से बचाए ।" मैं समझ गई कि अभी तक उनपर मेरे उस सलूक का असर है जो एक घंटा पहले उनके सामने आया था ।

"आमीन ! भी नहीं कही तुमने !"

"आमीन ! लो कह दिया, अब तो ख़ुश हो जाओ मेरे सरताज !"

उनकी आदत थी कि मग़रिब के बाद खाना खाकर लाइब्रेरी जाया करते थे । आज वहाँ भी नहीं गए, इशा की अज़ान सुनकर मस्जिद गए और सीधे घर आ गए । मैंने बिस्तर कर दिया था । आकर लेट गए । दूसरे पलंग पर मैं लेट गई । हम अभी सोए भी नहीं थे कि उन्होंने नसीहत शुरू कर दी । अपनी तक़रीर में उन्होंने दावत व तबलीग़ के तरीक़ों और मुसलमानों की ज़िम्मेदारियों पर खुलकर रौशनी डाली । तक़रीर का मक़सद यह था कि अल्लाह का दीन अल्लाह के बन्दों तक पहुँचाना हर मुसलमान पर फ़र्ज़ है । अगर इस फ़र्ज़ को अदा न किया जाएगा तो आख़िरत में पकड़ होगी ।

मुसलमानों में तबलीग़ करते वक़्त उन्हें याददिहानी कराई जाती है । लेकिन ग़ैर मुस्लिमों को अच्छी तरह समझाया जाए, उन्हें इस्लामी तालीमात की किताबें दी जाएँ । ख़ास तौर से तरजुमेवाला क़ुरआन ।

तक़रीर की तान क़ुरआन पर टूटी तो मैं समझ गई कि 'मौलाना साहब' का इशारा किसकी तरफ़ है । मैंने करवट ले ली और सोती बन गई 'मौलाना' की तक़रीर ख़त्म हो गई और उन्होंने भी एक तरफ़ करवट ले ली । चलो पीछा छूटा । मगर पीछा कहाँ छूटा, ख़यालात तो मेरे दिमाग़ में वही छाए हुए थे । सोते-सोते भी इन्हीं ख़यालात में खोई रही । यह तो एहसास मुझे हो गया कि मैंने ग़लती की । ग़ैरमुस्लिम लोग अगर इस्लाम की अब तक जानकारी हासिल न कर सके तो इस में हमारा ही क़ुसूर है । और यह तो मैंने हक़ीक़त में ग़लती की कि सुशीला को क़ुरआन नहीं दिया ।

मैं सो गई । अचानक मेरे कानों में आवाज़ आई "सुशीला कोई हाज़िर है ।" मैं चौंक पड़ी । आँखें मलकर देखा तो क़ियामत का नक़्शा मेरे सामने था । साहिबे ज़ुलजलाल अपने अर्श पर जलवा फ़रमा था । फ़रिश्ते लाइन से अर्श के आस-पास खड़े थे । मीज़ान नसब थी । लोगों की नेकियाँ और बुराइयाँ तौली जा रही थीं । कुछ लोगों को फ़रिश्ते मुबारकबाद देते हुए जन्नत की तरफ़ लिए जा रहे थे । कुछ लोगों को ग़ज़बनाक फ़रिश्ते जहन्नम की तरफ़ ढकेल रहे थे । जन्नत अपनी पूरी ख़ूबियों के साथ दाहिनी तरफ़ थी । जहन्नम अपनी तमाम हौलनाकियों के साथ बाईं तरफ़ । "हल मिम मज़ीद" (कुछ और है) की आवाज़ उससे बार-बार आ रही थी और लोगों का यह हाल कि किसी को होश न था । हर एक को अपनी पड़ी थी । दोज़ख़ पर मेरी नज़र पड़ी तो मैं घबरा गई । दिल में कहा, "ऐ काश ! मैं इससे बच जाऊँ, और चाहे सारी दुनिया इसमें झोंक दी जाए ।"

मैंने देखा, करामत मियाँ को फ़रिश्ते ज़ंजीरों में जकड़े हुए घसीटे लिए जा रहे थे । उनका जुर्म यह था कि ज़िन्दगी भर रियाकारी और दिखावे से काम लिया । यह लम्बी दाढ़ी, यह लम्बा कुर्ता, यह गेरवा रंग, हज़ारदाना तस्बीह, हर वक़्त हू-हक़ में मस्त, लेकिन जब एक दिन बदलुवा अपनी बदलिया को लेकर आया और मियाँ से कहा हमें मुसलमान कर लीजिए तो, उन्हें इस डर से कि कहीं डिप्टी साहब को मालूम हो गया तो लेने के देने पड़ जाएँगे, बदलुवा को झिड़क दिया था ।

"सुशीला कोई हाज़िर है !" आवाज फिर मेरे कानों में आई । मैंने देखा सुशीला एक तरफ़ को दौड़ती, लरज़ती आगे बढ़ी । फ़रिश्ते पहले उसे मीज़ान के पास ले गए । उसका मुक़दमा पेश होते देखकर मेरे रोंगटे खड़े होने लगे । मैंने देखा फ़रिश्तों ने सुशीला के हाथ से एक काग़ज़ लिया और तराज़ू के दाहिने पलड़े में रख दिया । पलड़ा झट से झुक गया । बाएँ पलड़े में कुछ न था । फ़रिश्तों ने अर्श की तरफ़ देखा ।

"ऐ रब्बे ज़ुलजलाल वल इकराम ! यह मासूम लड़की है, बाएँ पलड़े में रखने के लिए उसके आमालनामे में कोई गुनाह नहीं लिखा गया ।"

"इसे हमारे सामने लाओ ।" एक बुज़ुर्ग फ़रिश्ते ने सुशीला का हाथ पकड़कर अर्श के सामने कर दिया । सुशीला हैरान थी, आँखें फाड़े कभी फ़रिश्ते को और कभी अर्श को देख रही थी । उस बुज़ुर्ग फ़रिश्ते ने उससे पूछना शुरू किया, "तेरा दीन ?"

मैंने देखा सुशील घबरा गई, वह बोली, "मेरा दीन–मेरा दीन–वह हकलाकर रह गई ।"

"जल्दी बता तेरा दीन क्या रहा ।"

"बाबू जी !" वह रोने लगी ।

"बाबू जी क्या ! यहाँ बाप-दादा कोई काम न आऐंगे । जल्दी बता, तेरा दीन क्या रहा ।"

वह बड़ी उलझन में थी, उसने कहा, "क़ुरआन ।"

"बेवक़ूफ़ लड़की ! क़ुरआन तो अल्लाह के कलाम की किताब का नाम है । क़ुरआन ने तुझे कौन-सा दीन दिया है ?"

"मुझको क़ुरआन कल मिला, अभी मैंने पढ़ा नहीं ।"

"बरबाद हो गई तू ।"

"ख़बरदार ! ऐ मेरे मुक़र्रब फ़रिश्ते ! मेरी बन्दी को घबराओ मत, मैं उससे ख़ुद पूछूँगा ।"

वह बुज़ुर्ग फ़रिश्ता इस्तिग़फ़ार पढ़ता हुआ सजदे में गिर गया ।

"मेरी बन्दी !" एक ऐसी आवाज़ मैंने सुनी जिसमें वह प्यार था जो न देखा न सुना ।

"मेरे मालिक ! मेरे स्वामी !"

"अब तो तू बड़ी हो गई न !" इस आवाज़ के साथ ही मैंने देखा कि शफ़क़त व रहमत से भरपूर नूर में सुशीला नहा गई । उसने कहा , "मेरे मालिक, मेरे स्वामी ।"

"तूने अब तक क़ुरआन पढ़ा क्यों नहीं । मेरे दीन को जाना क्यों नहीं ?" सुशीला फिर घबराने लगी ।

"मेरी बन्दी ! परेशान न हो । मेरे सामने मेरे बन्दे घबराते नहीं । बता क्या बात है ?" जैसे सुशीला को बड़ा सहारा मिल गया ।

वह बोली, "मैंने शकीला भाभी से दीन समझना चाहा । उनसे क़ुरआन माँगा तो उन्होंने मुझे मुशरिक, काफ़िर, नापाक कहकर झिड़क दिया । मैंने सुना था, मेरे बाबूजी ने बताया था कि ख़ुदा एक है का मतलब समझना हो तो क़ुरआन देखो, इसी लिए मैं गई थी । भाभी ने मुझे नहीं दिया ।"

कड़-कड़, तड़-तड़, कड़-कड़-कड़ाक । ऐसी कड़ी आवाज़ अचानक आई जैसे लाखों बिजलियाँ आपस में टकरा गई हों । मैदाने महशर इस कड़ाके से हिल गया । जहन्नम ने पुकारा – 'हल मिम मज़ीद ।'

इसके बाद फ़ौरन फिर ख़ामोशी छा गई । अब जो आवाज़ मैंने सुनी उसको

सुनने के लिए मैं हरगिज तैयार न थी ।

"शकीला ख़ातून कोई हाज़िर है !" और जैसे किसी ने मुझे पीछे से धक्का दिया और मुझे अर्श की तरफ़ ले चला । मैं अदालत की तरफ़ जाना नहीं चाहती थी । मगर जा रही थी । किसी ने पकड़कर मुझे सुशीला के बराबर खड़ा कर दिया । अब मुझसे बहस होने लगी ।

"तुम्हारा दीन ?"

"इस्लाम ।"

"तुम्हारा रसूल ?"

"हज़रत मुहम्मद (सल्ल०)"

"तुम्हारी किताब ?"

"क़ुरआन पाक ।"

मैं ख़ुश थी कि जवाब ठीक दिए जा रही थी । फिर मुझसे पूछा गया, "तुमने क़ुरआन कितने बन्दों तक पहुँचाया ?"

"मौला ! मैं नमाज़ पढ़ती थी, रोज़ा रखती थी, इजतिमा में जाती थी । मैं तक़रीर करती थी और क़ुरआनी तालीमात अपनी तक़रीरों में पेश करती थी । सैकड़ों औरतों ने मेरी तक़रीर सुनी है ।"

"यह सुशीला कहती है कि तुमने उसे क़ुरआन से महरूम रखा ।"

इसके ज़वाब में मैं कुछ कहना चाहती थी कि मेरी ज़बान फूलकर मुँह में भर गई । मैं कुछ न बोल सकी ।

"क्या क़ुरआन सिर्फ़ मुसलमानों के लिए था ।"

मैंने चाहा कि हाथ से या किसी और इशारे से जवाब दूँ । मैंने महसूस किया कि इन सबने मेरा साथ छोड़ दिया ।

"तुमने सुशीला को काफ़िर और मुशरिक क्यों कहा जबकि तुमने उसके सामने दीन नहीं पेश किया । तुम दीन पेश करतीं, उसे समझातीं, फिर यह अगर इनकार करती और तुम्हारी राह रोकती तब तुमको हक़ था जो कुछ कहतीं, मगर तुमने उस पर ज़ुल्म किया है । फ़रिश्तो ले जाओ इस ज़ालिम को जहन्नम में झोंक दो । और इस सुशीला को हमारी रहमत की जगह में वहाँ पहुँचा दो जो मासूम बच्चों के लिए है ।"

फ़ैसला होते ही ग़ज़बनाक फ़रिश्ते मेरी तरफ़ बढ़े । आग से सुर्ख़ की हुई एक

ज़ंजीर उन्होंने मुझ पर फेंकी । लाल-लाल ज़ंजीरों के शोलों से ही मेरा बदन झुलस गया । मैंने चीख़ना चाहा । लेकिन मुझसे बोला न गया । मुँह में ज़बान फूली हुई थी, मैंने बोलने की कोशिश की । घू-घू, घी-घी बड़ी मुश्किल से मेरी ज़बान से निकला ।

"अरे ! क्या है, शकीला ! शकीला ! क्या ख़्वाब देखा ।"

मुझे किसी ने झंझोड़ दिया । मैंने देखा, मेरा प्यारा शौहर मुझे जगा रहा था । मेरे बदन का बाल-बाल लरज़ रहा था ।

"मुझे सुशीला के पास ले चलो ।"

"आधी रात का वक़्त है, इस वक़्त ?"

"अरे भई बात तो बताओ । यह अचानक तुमको क्या हो गया ?"

मैंने ख़्वाब बयान किया । बोले, "यह वही दिन था जिससे मैंने तुम्हें डराया था । ख़ैर अब सो जाओ सुबह चलेंगे ।"

और मैं सुबह के इन्तिज़ार में फिर न सो सकी ।

—●—

9

नबियों की माँ

उसके शौहर को क़ौम ने किसी तरह गवारा न किया । बाप मुल्क के बादशाह की तरफ़ से सबसे बड़ा मज़हबी पेशवा और सरकारी पुरोहित था । उसके घर दौलत की रेल-पेल थी । दौलतमन्द बाप ने बेटे को घर से निकाल दिया । बहू चाहती तो शौहर को छोड़कर ख़ुसर के पास रहकर शाहाना ज़िन्दगी गुज़ार सकती थी, अगर वह चाहती तो शौहर से नाता तोड़कर 'मादरे वतन' की आँख का तारा ही रहती, लेकिन अब मामला सिर्फ़ शौहरपरस्ती का न था, बल्कि शौहर अब अल्लाह का रसूल बन चुका था और अब सवाल यह था कि अल्लाह को कैसे राज़ी किया जाए । हक़ को हक़ समझ लेने के बाद उसने ऐशो आराम को लात मारी, दौलत, इज़्ज़त, ख़ानदान, मुल्क सब कुछ ठुकरा दिया । केवल ख़ुदा की रज़ा के लिए, जिस वक़्त उसने दिल में तय किया उस वक़्त उसकी निगाहों से यह बात छिपी हुई न थी, कि घर से निकलने के बाद जंगलों की ख़ाक छाननी होगी । काँटों का सामना होगा । ख़तरनाक जानवरों से वास्ता पड़ेगा । दुनिया इस आवाज़ से वाक़िफ़ नहीं है जो उसका शौहर बुलन्द कर रहा है । इराक़ की वे मशहूर नदियाँ उसके सामने थीं जिनको सिर्फ़ अल्लाह के भरोसे पर ही पार किया जा सकता है । एशिया के बीच का वह बहुत-ही बुलन्द और ज़बरदस्त पहाड़ों का सिलसिला उसकी नज़रों में था जिसे पार करना उस वक़्त एक चमत्कार से कम न था । और फिर अरब का वह तपता हुआ रेगिस्तान जो बड़े-बड़ों का पित्ता पानी कर देता है, अरब के वे गर्म पहाड़ जिनकी तरफ़ दिन में देखने से आँखों की पुतलियाँ जल उठती हैं, यह सब भी उसने सुन रखा था । उसे मालूम था कि नंगे पैर ही इन सबको पार करना होगा । फिर भी वह ज़रा न झिझकी । उसको कोई डर हिजरत से न रोक सका । ऐश, लालच, दबाव और देश छोड़ने का डर, इन सबमें से कोई ताक़त उसे क़दम आगे बढ़ाने से न रोक सकी और वह अल्लाह का नाम लेकर अपने मुहाजिर शौहर के पीछे चल दी । क़ौम के मर्द उसके इस इक़दाम से काँप उठे । इलाक़ा 'उर' की रहनेवालियाँ काँपकर रह गईं । बाप ने बढ़कर रोका, माँ ने समझाया, रिश्तेदारों ने आगे के ख़तरात से ख़बरदार किया, लेकिन वह न मानी । उसने हक़ की जिस आवाज़ पर लब्बैक कहा था, उसी की वजह से उसने वह रास्ता अपना लिया जिसकी सख़्तियाँ और परेशानियाँ लगभग पाँच हज़ार साल बाद आज की दुनिया समझ ही नहीं सकती । लेकिन अल्लाह

की इस नर्म व नाज़ुक बन्दी ने इसी राह पर क़दम रख दिया और वह अल्लाह का नाम लेकर अपने मुहाजिर शौहर के पीछे चल दी । उसने हज़ारों मील पैदल चलकर अपने शौहर के साथ दुनिया के बसनेवालों को हक़ की दावत दी । पहाड़ों की खोहों में बसनेवाले ख़ानदानों को पुकारा । रेगिस्तान के ख़ानाबदोश क़बीलों को आवाज़ दी और उस शौहर की आवाज़ में आवाज़ मिलाकर जिसे अल्लाह ने अपना रसूल बनाया था, बार-बार कहा—

"लोगो ! उस हस्ती के सिवा कोई माबूद नहीं हो सकता, जिसने तुम्हें पैदा किया और जिसने तुम्हारे लिए यह दुनिया सँवार दी, तुम उसको छोड़कर किधर बहके जा रहे हो ? क्या तुम अक़्ल से काम नहीं लेते ?"

जंगलों के काँटों ने उसके नाज़ुक तलवों को छलनी कर दिया । रेगिस्तान की तपती हुई रेत ने उसके पाँवो में छाले डाल दिए और शोलों की तरह गर्म हवाओं ने उसके बदन को झुलस दिया । लेकिन वह जंगल के बासियों, रेगिस्तान के बद्दुओं और साहिली इलाक़े के रहनेवालों को एक ख़ुदा की तरफ़ बुलाने से न थकी ।

वह भी कैसा नाज़ुक मौक़ा था जब उसका दाख़िला मिस्र में हुआ और मिस्र के बादशाह ने उसके हुस्न व जमाल की शोहरत सुनकर पकड़ बुलाया और फिर इस पाकबाज़ यानी अल्लाह के मुहाजिर रसूल की बीवी पर हाथ डाल दिया । एक इज़्ज़तवाली औरत ही समझ सकती है कि उस वक़्त उस ग़रीब ने दिल की किस गहराई से ख़ुदा को पुकारा होगा । कहते हैं कि उसकी ज़बान से सिर्फ़ 'ऐ अल्लाह !' ही निकला था कि बादशाह का हाथ शल होकर रह गया और वह उस पाकीज़ा ख़ातून के आगे गिर पड़ा । यह भी कहा जाता है कि बादशाह ने तीन बार ऐसा ही इरादा किया, और हर बार उसका यही हाल हुआ और हर बार उसके गिड़गिड़ाने पर उस भोली औरत ने उसे माफ़ कर दिया । फिर क्या हुआ ? फिर हक़ का असर उस बादशाह पर हुआ और उसने मुतास्सिर होकर अपने महल की सबसे ज़्यादा नेक और ज़हीन लड़की (शायद बेटी या भतीजी) को उसकी तरबियत में दे दिया और कह दिया, "आपको इख़तियार है चाहे तो इस शहज़ादी को लौंडी बना लें ।"

मगर इस शरीफ़ औरत ने क्या किया ? उसने बड़े खुले दिल के साथ उसे अपने शौहर के निकाह में दे दिया ।

इस तरह हँसी-ख़ुशी उसपर क़ायम रहना आसान काम नहीं । यह वह मामूली काम नहीं जिसकी तारीफ़ कोई छोटा आदमी कर सके ।

हक़ की तबलीग़ करते हुए अल्लाह के एक अज़ीम रसूल की पैरवी में दीन

की दावत पेश करते-करते वह बूढ़ी हो गई । आख़िर अल्लाह ने भी उसको वह दर्जा इनायत फ़रमाया जो फिर कोई औरत न पा सकी । परवरदिगारे आलम ने उसके पेट से वह पैग़म्बरी सिलसिला शुरू किया जिसकी शुरूआत हज़रत इस्हाक़ से हुई और ख़ात्मा हज़रत ईसा पर ।

सलाम हो इस सिन्फ़े नाज़ुक के इस मज़बूत इरादे पर । सलाम हो उस महान औरत पर जिसने एक बार पूरी सूझ-बूझ के साथ हक़ को इख़तियार किया और सारी उम्र उस पर जमी रही । हज़ारों सलाम हों नबियों की इस मोहतरम माँ हज़रत सारह (रज़ि०) पर जिन्होंने वह नमूना पेश किया जो क़ियामत तक तमाम औरतों के लिए एक रौशन चिराग़ है । इसके बाद सलाम हो उन तमाम पाकीज़ा औरतों पर जो उसी के नमूने को अपने लिए हिदायत का ज़रिया बनाएँ और अपने दीनदार शौहर के क़दम से क़दम मिलाकर इस्लाम को फैलाने में अपनी जान की परवाह न करें !

10

माँ

"ऐ भाई यह जगह 'जाराना' ही कहलाती है न ?"

"हाँ ऐ मुहतरम ख़ातून यह 'जाराना' ही है । वह क्या काम है जो आपको यहाँ आना पड़ा ?"

"ऐ संजीदा इनसान मुझे उम्मीद है कि तू मुझे ठीक-ठीक बता देगा, मैं यहाँ अपने बेटे से मिलने आई हूँ ?"

"आपके बेटे का क्या नाम है ?"

"मेरे बेटे का नाम मुहम्मद है ।"

"मुहम्मद ! आपके बेटे का नाम मुहम्मद है । इस नाम के तो कई आदमी यहाँ हैं ।"

"मैं मुहम्मद बिन अब्दुल्लाह से मिलने आई हूँ । मैंने सुना है कि मेरे बेटे पर अल्लाह ने सबसे बड़ी रहमत नाज़िल फ़रमाई है ।"

"यानी मुहम्मद रसूलुल्लाह (सल्ल०), बेशक ऐ मुहतरम ख़ातून ! उन पर अल्लाह ने सबसे बड़ी नेमत नाज़िल फ़रमाई है, मगर उनकी प्यारी माँ का इन्तिक़ाल तो उनके बचपन ही में हो गया था । माफ़ फ़रमाइएगा, आप इस उम्र में दाख़िल हो चुकी हैं जिसमें इनसान का दिमाग़ उसके बस में नहीं रहता ।"

"ऐ संजीदा इनसान तूने वही बात कही जो कई और आदमियों से अपने बारे में सुन चुकी हूँ । लोगों से जब मैंने अपने बेटे मुहम्मद बिन अब्दुल्लाह (सल्ल०) के बारे में पूछा तो वे मुस्करा दिए, फिर मुझसे तो नहीं आपस में कहने लगे कि इस बुढ़िया पर जुनून का असर मालूम होता है । हालाँकि ख़ुदा की क़सम मैं सच कहती हूँ, क्या तुम मुझे मुहम्मद बिन अब्दुल्लाह (सल्ल०) के पास ले चलोगे ?"

"मेरे साथ आइए ।"

"अल्लाह तेरे चेहरे को रौशन करे ।"

इस थोड़ी-सी बातचीत के बाद बूढ़ी औरत उस आदमी के साथ चल दी । वह अन्दर ही अन्दर कहती जाती थी कि लोग मुझे पागल समझ रहे हैं । लेकिन जब मैं अपने बेटे से मिलूँगी सब हैरान रह जाएँगे, मेरा बेटा मुझे ज़रूर पहचान

लेगा । शीमा कहती थी, "माँ आपका बेटा 'मुहम्मद' आपको बहुत याद करता है ।" हाँ वह ज़रूर याद करता होगा ।

"मुहतरमा आप अन्दर ही अन्दर क्या फ़रमा रही हैं । कुछ शब्द मैं सुन रहा हूँ, लेकिन मतलब समझ में नहीं आता ।"

"तुम मेरे बेटे के पास ले चलो सब समझ जाओगे ।"

"वह देखो सामने लोग बैठे हैं और वे हैं मुहम्मद बिन अब्दुल्लाह, अल्लाह के आख़िरी रसूल (सल्ल०), उनपर मेरे माँ-बाप क़ुरबान हों ।"

यह सुनकर बूढ़ी औरत सीधी खड़ी हो गई । उसने एक नज़र लोगों पर डाली फिर अचानक वह मुहब्बत में बेक़ाबू-सी हो गई ।

"यही है मेरा बेटा मुहम्मद (सल्ल०), ख़ुदा की क़सम मैंने पहचान लिया । न मेरी आँखों ने मुझे धोखा दिया न दिमाग़ ने ।"

वह प्यार भरे अन्दाज़ में आगे बढ़ी । मुहम्मद (सल्ल०) 'जाराना' के उस मक़ाम पर अपने साथियों में गोश्त बाँट रहे थे । (उन सब पर अल्लाह की रहमत हो !) आपने अचानक उस बूढ़ी औरत को देखा । "मेरी माँ !" कहते हुए आगे बढ़े, बूढ़ी ख़ातून, "मेरा बेटा, मेरा बेटा !" कहती हुई इस तरह चली जा रही थी जैसे कोई ग़ैबी कशिश आप से आप उसे उस तरफ़ खींच रही हो । उसके पैर उसकी तेज़ी का साथ न दे सके, वह ज़मीन पर बैठ गई ।

नबी (सल्ल०) के उठते ही तमाम सहाबा की नज़रों ने हैरत और ताज्जुब के साथ इस मंज़र को देखा जो उन्होंने कभी नहीं देखा था । सब सोच रहे थे कि नबी (सल्ल०) की प्यारी माँ का इन्तिक़ाल हो चुका है, फिर यह कौन औरत है जिनकी तरफ़ हुज़ूर बेताब होकर बढ़े चले जा रहे हैं । समझ कोई न सका, लेकिन सबने आगे बढ़कर इस बूढ़ी औरत पर साया कर लिया । अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने अपनी चादर दी, इस पर मेरी माँ को बिठा दो ।"

लोगों को और ज़्यादा हैरत हुई कि यह बड़ाई इस ख़ातून के सिवा किसी को नसीब न हुई ।

"शीमा ने तुझको और तेरे साथियों को सलाम कहा है ।"

"उनपर भी सलामती और अल्लाह की रहमत हो और आप पर भी ।" सहाबा की महफ़िल में एक गूँज पैदा हुई, बूढ़ी ख़ातून ने एक नज़र सबपर डाली, उसका चेहरा चमक रहा था ।

"शीमा यह भी कहती थी कि तुझ पर अल्लाह ने सबसे बड़ी रहमत और

नेमत उतारी, लेकिन मैं देखती हूँ कि तू बेहद दुबला हो रहा है ।"

"माँ मुझे अल्लाह ने अपना रसूल बनाया है । मैं नुबूवत के बोझ से दबा जा रहा हूँ, क्या आप मेरे नबी होने को सच्चा समझेंगी ।"

"क्यों नहीं, क्यों नहीं, मैं गवाही देती हूँ कि मुहम्मद बिन अब्दुल्लाह (सल्ल०) अल्लाह के रसूल हैं । ऐ मेरे बेटे ! ऐसी फ़य्याज़ी एक नबी और उसके साथी ही कर सकते हैं । हवाज़न की लड़ाई में जब शीमा और उसके साथी और सैकड़ों बनू सअद क़ैद होकर आए तो सिर्फ़ मेरे दूध की वजह से फ़िदया लिए बिना उन्हें आज़ाद कर दिया गया । ऐ मेरे बेटे तू भी शरीफ़ है और तेरे साथी भी ।"

नबी (सल्ल०) की ख़ुशी की उस वक़्त इन्तिहा न थी । लेकिन यह पहेली अब भी पहेली ही थी कि यह औरत हुज़ूर (सल्ल०) की माँ कैसे हो सकती है जबकि आप की अम्मीजान आपके बचपन में इन्तिक़ाल फ़रमा गई थीं ।

"शीमा यह भी कहती थी कि अल्लाह ने नुबूवत का बोझ जिस बंदे पर डाला उसके बदन पर गोश्त न चढ़ सका । सच कहा था शीमा ने ।"

"मैंने पा लिया, मैंने पा लिया ।" अचानक हज़रत अबू बक्र सिद्दीक़ (रज़ि०) की ज़बान से निकला, सब उनकी तरफ़ देखने लगे । हज़रत सिद्दीक़ (रज़ि०) को सही राय क़ायम करने और मामले को समझने की जो ख़ूबी हासिल थी उसे सब जानते ही थे, पूछने लगे कौन हैं यह बुज़ुर्ग ख़ातून ? जनाब अबूबक्र सिद्दीक़ (रज़ि०) ने हुज़ूर (सल्ल०) से बड़े-ही अदब के साथ अर्ज़ किया— "ऐ अल्लाह के रसूल ! अब सब्र नहीं होता, ख़ुदा की क़सम यह हलीमा सादिया हैं ।"

हुज़ूर (सल्ल०) ने सिद्दीक़े अकबर (रज़ि०) की बात सुनी । उनकी तरफ़ देखा । फ़रमाया बेशक यह हलीमा सादिया हैं । क़बीला हवाज़न की सबसे इज़्ज़तदार ख़ातून । इन्होंने मुझे चार साल पाला, अल्लाह इन पर अपनी रहमत नाज़िल करे । यह मेरी माँ हैं और अब मुसलमान हो चुकी हैं । अल्लाह इनसे राज़ी हो !

—●—